॥ श्रीहरिः ॥

387

प्रेम-सत्संग-सुधा-माला

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशकका निवेदन

किन्हीं एकने किन्हीं एकको प्रश्नोंके उत्तरमें बहुत दिनों पहले कुछ बातें बतायी थीं। वे बातें कहीं लिखी रखी थीं। किसीके हाथ अकस्मात् लगीं और वे 'कल्याण'में 'सत्संग-सुधा' शीर्षकसे मार्च १९५७ से दिसम्बर १९५७ तक प्रकाशित हो गयीं। इन 'बातों'को पढ़कर बहुत लोगोंने उन्हें पुस्तकाकाररूपमें प्रकाशित करनेका अनुरोध-आग्रह किया; परंतु प्रकाशनमें देर होती रही। इस बार भगवत्कृपासे अवसर आ गया और 'सत्संग-सुधा' नामके बदले 'प्रेम-सत्संग-सुधा-माला'के नाम-से मालाकी १०८ मणियोंकी तरह वे 'बातें' १०८ रूपमें प्रकाशित हो रही हैं। नाम इसलिये बदला गया कि 'सत्संग-सुधा' नामक एक पुस्तिका पहले प्रकाशित हो चुकी है, वही नाम रहनेसे लोगोंको भ्रम होनेकी सम्भावना है।

जिनको पसन्द हो, वे इन 'बातों'को पढ़ें और रुचि हो तो लाभ उठावें।

विनीत—

प्रकाशक

॥श्रीहरिः ॥

प्रेम-सत्सङ्ग-सुधा-माला

१—आपका मन जहाँ है, वहीं आप हैं—इस बातको गाँठ बाँधकर याद कर लें। यहाँ बैठे हुए आप यदि कलकत्तेकी दूकानका चिन्तन करते हैं तो आप असलमें कलकत्तेमें ही हैं। इसी प्रकार यदि शरीर यहाँ है, पर मन शरीरको छोड़कर दिव्य वृन्दावन-धामकी लीलामें है तो आप वृन्दावनधाममें ही हैं। प्रारब्ध पूरा होनेपर शरीर गिर जायगा और आप सदाके लिये उसी लीलामें सम्मिलित हो जायँगे। सब कुछ आपकी इच्छापर निर्भर है। इस अटूट सिद्धान्तको मानकर साधनामें लगे रहनेसे ही उन्नति हो सकती है।

२—आपके मनकी दशाका तो मुझे ज्ञान है नहीं कि उसमें क्या है। पर मेरा तो यह विश्वास है कि जिस दिन आप यथार्थमें चाहने लगियेगा कि मेरा मन व्रजलीलामें फँस जाय, उसी दिन, उसी क्षण अपने-आप आपको मनके रोकनेकी नयी-नयी युक्तियाँ सूझने लगेंगी कि ऐसे रोकें, ऐसे फँसायें, ऐसे करें। नहीं होता है, इसमें प्रधान कारण चाहमें कमी ही है। मुझे अनुमान होता है कि वह व्याकुलता ही मनमें शायद नहीं है। कभी-कभी सोडावाटरके उफानकी तरह चित्त चाहता है, फिर ठंढा पड़ जाता है।

३—यहाँ घड़ी दीख रही है, पर यह बिलकुल सत्य बात है कि इसी घड़ीकी जगह श्रीकृष्ण हैं। अब जबतक आप घड़ी देखना बंद नहीं करेंगे, तबतक श्रीकृष्ण कैसे दीख सकते हैं। क्योंकि मन तो एक

श्रीकृष्णको देखनेपर घड़ी नहीं दीखेगी और घड़ीको देखनेपर श्रीकृष्ण नहीं दीखेंगे। वैसे ही मनसे या तो जगत्‌का चिन्तन होगा या श्रीकृष्णका। जहाँ जिस किसी भी पदार्थका चिन्तन आपका मन करता है, वह पदार्थ उनकी ही मायाकी रचना है, उनकी एक लीला है। जबतक आप इस लीलाको छोड़कर उनकी उस दिव्य चिन्मयी लीलामें मन नहीं ले जायँगे, तबतक कोई दूसरा क्या करेगा। आप कहें कि हमसे ऐसा होता नहीं—इसका साफ उत्तर है कि आपका मन अभी यह चाहता नहीं कि इस लीलाको छोड़कर उस परम दिव्य लीलामें जाय।

४—आरम्भमें कठिनाई होती है, पर ऐसी-ऐसी युक्तियाँ हैं कि जिनके करनेसे मन वशमें होगा ही। जबतक मन उसमें लीन नहीं होगा, तबतक केवल पढ़कर वह आनन्द आप ले ही नहीं सकते। आप करना चाहें तो मैं एक युक्ति बतलाता हूँ, पर वह होगी करनेसे ही। मान लें आप 'हरे राम' जपते हैं। इसको जपते रहें, पर प्रत्येक मन्त्रके उच्चारणके साथ एक बार आप यह ध्यान कीजिये कि श्रीप्रिया-प्रियतम एक वृक्षके नीचे खड़े हैं। संध्याके समय कहीं चले गये। टीबेपर बैठकर देखिये—एक सड़क है, अत्यन्त सुन्दर सड़क है और उसपर वृक्ष-ही-वृक्ष लगे हैं। अब प्रत्येक वृक्षके नीचे आप एक बार श्रीकृष्णको एवं श्रीराधारानीको देखिये तथा मालाके मनके फेरते चले जाइये। इस प्रकार तीन माला अर्थात् वृक्षके नीचे ३०० बार श्रीप्रिया-प्रियतमका दिव्य चिन्तन कीजिये, इस दृढ़ निश्चयके साथ कि यह करना ही है। यह अभ्यास यदि बढ़ गया और कहीं १६ माला 'हरे राम' के षोडश नामकी हो गयी तो आगे मनको टिकानेमें बड़ी सुविधा होगी। पहले तीन मालासे आरम्भ करें।

वास्तवमें यदि आप चाहते हैं तो आपको यह करना ही पड़ेगा।

धीरे-धीरे मनकी बदमाशी मिटानी ही पड़ेगी। आप देखें, मन तो जैसे आज बदमाशी कर रहा है, मरते समय और भी अधिक बदमाशी कर सकता है तथा पता नहीं कब किस संगमें फँसकर मनपर कैसा रंग चढ़ जाय। अतः उसके पहले ही मनकी बदमाशीको पूरी तरह मिटा दें। उसके लिये यह बड़ी सुन्दर युक्ति है। एक युक्ति और भी है। पर पहले आप इसे करें, फिर आगेकी युक्ति कभी पीछे बतायी जा सकती है। वह युक्ति संक्षेपमें यह है कि जैसे मालाका जो नियम चल रहा है, वह चले; पर खूब कड़ाईसे यह नियम बना लें कि 'लगातार तीन-चार घंटे बैठकर व्रज-सम्बन्धी ५००० चीजोंको याद करूँगा। एक-दो सेकण्डके लिये उन पाँच हजार चीजोंको याद कर ही लूँगा, चाहे मन कितनी ही बदमाशी करे। इसके लिये एक किताब बनाकर अपने पास रख लेनी चाहिये तथा १-२-३ ऐसे नम्बर लगाकर, जैसे पाठ किया जाता है वैसे एक-एक चीजको पढ़ते जाना चाहिये और उसका एक-एक सेकण्डके लिये ही चित्र बाँधते जाना चाहिये तथा जीभसे नाम चलते रहना चाहिये। होता यह है कि मन भागने लगता है, पर नियमके कारण जहाँ साल-छः महीने प्रतिदिन दृढ़तासे ऐसा हुआ कि अभ्यासवश मनको ठीक उसी समय प्रतिदिन वहाँ आना पड़ेगा। पर बिना नागा इस नियमको निबाहनेसे ही सफलता मिलती है। हाजिरी, मुलाहिजा, शिष्टाचारके फेरमें पड़नेपर तो कोई नियम नहीं सधता। पहले आप यह तीन मालावाला नियम आजसे या कलसे शुरू करें और इसको खूब कड़ाईसे चलायें।

देखें—विषयोंमें सुख नहीं है, पर तो भी सुखकी भ्रान्ति होती है। इसका रहस्य मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि यह भ्रान्ति क्यों होती है। मान लें, खूब जोरसे भूख लगी है; अब खानेके समय बड़ा आनन्द

मिलता है। पर असलमें यह जो आनन्द मिलता है, वह खानेकी वस्तुसे नहीं आता, वह आता है उन भगवान्‌से, जो हृदयमें बैठे हैं। होता यह है कि मनमें इच्छा हुई, उत्कट इच्छा हुई कि कुछ खाऊँ। इसी इच्छाकी पूर्ति जब होती है, तब उतनी देरके लिये मनकी चञ्चलता मिट जाती है और वह स्थिर हो जाता है। स्थिर मनपर आत्माका सुख प्रतिबिम्बित होने लगता है और मनुष्यको आनन्दका अनुभव होता है। असलमें तो मनके टिकनेसे आत्माके आनन्दकी छाया मनपर पड़ी है, इसीलिये आनन्दका अनुभव हुआ है।

इसी प्रकार सभी विषयोंकी बात है। इच्छा हुई और जब वह इच्छा पूर्ण होने लगती है, तब उतनी देरके लिये मन स्थिर हो जाता है। मन स्थिर होते ही आत्माकी छाया उसपर पड़ने लग जाती है और मनुष्य मूर्खतासे मान बैठता है कि अमुक विषयसे मुझे सुख मिला है। अवश्य ही उस बातपर आसानीसे विश्वास होना बड़ा कठिन है, पर सत्य बात तो यही है।

इसीलिये मनको ठीक स्थिर करनेकी आवश्यकता है। यही मन जब भगवान्‌में स्थिर हो जाता है, तब तो ऐसा विलक्षण नित्य सुख मिलता है कि फिर वह कभी मिटता नहीं। वह आनन्द नित्य है और उसे प्राप्त करके जीव निहाल हो जाता है, इसलिये इसको आप अवश्य करें। लीलामें मन लगानेमें कोई परिश्रम नहीं है; पर हमसे नहीं होता, इसका कोई उत्तर मेरे पास नहीं है।

५—अनादिकालसे विषयोंके संस्कार मनमें हैं और विषयोंकी इच्छा होती है। प्रत्येक विषयकी कामनाके साथ ही मन उसकी पूर्तिके लिये व्याकुल होता है। पूर्ति हुई; व्याकुलता मिटी, पर यह मिटेगी थोड़ी देरके लिये ही, क्योंकि उतनी देरतक आत्माकी छाया मनपर पड़ी थी।

जैसे हिलते हुए दर्पणमें मुख नहीं दीखता, स्थिर होनेपर दीखने लग जाता है, वैसे ही चञ्चल मनमें आत्माका सुख प्रतिबिम्बित नहीं होता। जब मन-दर्पण थोड़ी देरके लिये शान्त होता है, तब उसका हिलना बंद होकर आत्माका प्रतिबिम्ब उसपर पड़ता है। फिर कुछ क्षणके बाद दर्पण हिलने लगता है। इसी तरह विषयकी पूर्ति, सुख, फिर विषयकी कामना और व्याकुलता। यह चक्कर चलता रहता है। असलमें वह सुख भी छाया है, असली नहीं। असली सुख तो उस वस्तुमें है, जिसकी छाया पड़ती है। वह परम वस्तु है भगवान्।

६—लीला-वस्तुओंके पाठका नियम लेकर साधना करनी पड़ती है। एक वाक्य पढ़ा और फिर उस चीजका एक सेकण्ड मनमें चित्र बाँधकर देख लिया। फिर दूसरा वाक्य पढ़ा, उस वस्तुका चित्र बाँधकर देख लिया। तीसरा वाक्य पढ़ा, उस वस्तुका चित्र बाँधकर देख लिया। यह पाठ जिस दिन पाँच हजार वस्तुओंका लगातार पूरा हुआ कि लगातार ६ घंटे लीलाका ध्यान हो जायगा। जैसे—

(१) राधाकुण्डका जल चमचमा रहा है।
(२) कुण्डपर कमलके फूल हैं।
(३) कमलके हरे-हरे चौड़े पत्ते हैं।
(४) नीले-लाल-उजले—तीन तरहके कमल हैं।
(५) कमलके फूलपर काले-काले भौंरे मँडरा रहे हैं।
(६) पवनके कारण कमलकी डंडी हिल रही है।
(७) कमलके फूलके पास एक हंस बैठा है।
(८) हंस उजले रंगका है।
(९) हंस बोल रहा है।
(१०) राधाकुण्ड बहुत लम्बा-चौड़ा है।

(११) पूर्वकी ओर करीब एक फर्लांग लम्बा है।

इस प्रकार प्रतिदिन नियमसे करना चाहिये, आनन्द आये या न आये। मनकी बदमाशीसे कभी-कभी जी ऊबेगा, पर तुले रहनेपर मन फिर लग जायगा।

और भी युक्तियाँ हैं—जैसे भागवतका पाठ करना हो। अब प्रत्येक श्लोकपर जब एक बार प्रिया-प्रियतमकी छबिका चित्र बँध जायगा, तब दूसरा श्लोक पढ़ेंगे। इस प्रकार यदि बारह अध्याय पाठका नियम हो तो तीन घंटे ध्यान हो जायगा। अठारह अध्याय गीता-पाठका नियम हो तो तीन घंटे बीत जायँगे। पर होगा लगनसे करनेपर ही।

७—लगनके लिये, तत्परताके लिये एक युक्ति है। वह यह है कि नींद खुलते ही हृदयसे श्रीप्रिया-प्रियतमसे निवेदन करें कि अब जीवन तुम्हारे हाथमें है और फिर एक काम करें—एक रूमाल बराबर पास रखें, उसमें गाँठ बाँध दें। गाँठ देते समय यह पद गाते रहें—

नंदलाल सौं मेरो मन मान्यौ, कहा करैगो कोय री।
हौं तो चरन-कमल लपटानी, होनी होय सो होय री॥
गृहपति मात-पिता मोहि त्रासत, हँसत बटाऊ लोग री।
अब तो जिय ऐसी बनि आई, बिधना रच्यो है संजोग री॥
जो मेरौ यह लोक जायगौ, अरु परलोक नसाय री।
नंदनँदन कौं तऊ न छाड़ौं, मिलैंगी निसान बजाय री॥
यह तनु फिर बहुरौ नहिं पैये बल्लभ बेष मुरार री।
परमानँद स्वामी के ऊपर सरबस डारौं वार री॥

—यह पढ़कर गाँठ बाँध लें और जहाँ जायँ, जहाँ बैठें, रूमालको सामने रखे रहें तथा बार-बार मन-ही-मन निश्चय दृढ़ करते

रहें हमें यही करना है। चाहे सारा संसार जल जाय, नष्ट हो जाय; पर हमें यह एक ही काम करना है। दिनभर वह गाँठ सामने रखें; प्रातःकाल फिर उठकर उसे खोलें, खोलकर फिर पद गाते हुए बाँध दें। इससे बड़ी सहायता मिलती है। किसीको पता भी नहीं चलता कि गाँठ किसलिये है। रूमाल है, किसी कामके लिये गाँठ दी हुई होगी अथवा कोई चीज बाँधी हुई होगी—लोग यही समझेंगे। पर वह सामने हाथमें सदा पड़ा रहे। जहाँ गये, हाथमें लेकर बैठे रहे। इससे प्रियतम्के साथ आप घुलमिल जायँगे।

जब मैं था, तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी ता में द्वौ न समाहिं॥
प्रेम न बाड़ी नीपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देय लै जाय॥

× × × ×

कबिरा खड़ा बजार में लिये लुकाठी हाथ।
जो घर फूँकौ आपना तो चलौ हमारे साथ॥
प्रेम-पंथ अति ही बिकट, देखत भाजैं लोग।
कोउक बिरले चलि सकैं, जिन त्यागे सब भोग॥

बिलकुल संसारकी दृष्टिमें निकम्मा हो जाना पड़ता है, तब रास्ता तय होता है। फिर तो एक-से-एक युक्ति सूझने लगेगी। सोचिये, एक दिन तो सब छूटेगा ही, फिर इससे बड़ी मूर्खता क्या होगी कि हम ऐसी नश्वर पदार्थोंके पीछे अनमोल जीवन व्यर्थ खो दें। पर खोते ही हैं। विषय अनादिकालसे मनमें धँसे हुए हैं और मन एक बार भी भगवान्में नहीं फँसा। नहीं तो, जिस दिन फँसा कि बस विषय स्वाहा हुए। ललितकिशोरीजी पहले करोड़पति थे; पर जब वैराग्य हुआ और

प्रिया-प्रियतमका रंग चढ़ा तब उन्होंने गाया—

बन बन फिरना बेहतर हमको, रतन-भवन नहिं भावै है।
लता तरे पड़ रहने में सुख नाहिन सेज सुहावै है॥

नारायणस्वामी तो कहते हैं—

जाहे लगन लगी घनस्याम की।
धरत कहूँ पग परत कितैहू, भूलि जाय सुध धाम की॥
छबि निहारि नहिं रहत सार कछु, निसि-दिन पल-छिन-जाम की।
जित मुँह उठै तितै ही धावै, सुरति न छाया घाम की॥
अस्तुति निंदा करौ भले हीं, मैंड तजी कुल-गाम की।
नारायन बौरी भई डोलै, रही न काहू काम की॥

पर इन सबको जीवनमें उतारनेसे ही काम बनता है, बातें करनेसे नहीं।

८—एक अकाट्य नियम है—मनसे एक ही काम होगा, श्रीकृष्णका चिन्तन या विषयका चिन्तन। आपको विश्वास कोई कैसे करा दे; पर यदि शास्त्रपर विश्वास करें तो शास्त्र इस सिद्धान्तसे भरे पड़े हैं कि भगवान् सर्वत्र हैं। प्रह्लादके लिये वे खम्भेसे निकल पड़े। उसी प्रकार सच्चे विश्वासी भक्तके लिये आज भी भगवान् श्रीकृष्णके रूपमें खम्भेसे निकल सकते हैं। आपके मकानके प्रत्येक खम्भेमें श्रीकृष्ण हैं; पर जबतक आप मकानके खम्भेमें मन फँसाये रहियेगा, तबतक श्रीकृष्ण क्यों आने लगें। वे तो चाहनेवालेके सामने आते हैं। आप या कोई भी कहता है कि 'हे भगवन्! मकान नहीं छूटे, धन नहीं छूटे, रुपये-पुत्र बने रहें, बढ़ते रहें।' तो श्रीकृष्ण कहते हैं—'यह मेरे श्रीकृष्णरूपको नहीं चाहता, पर यह मेरा जो मायिक रूप है—धन, पुत्र, मकान उसीको चाहता है। तब मैं अपने असली रूपमें क्यों आऊँ?'

सारांश यह है कि श्रीकृष्णको ढूँढ़ने जानेकी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है मनसे सब कुछ निकालकर उनमें मन फँसा देनेकी। फिर तो जो यथार्थ वस्तु है, वह सामने आ ही जायगी। श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण हैं, दूसरी वस्तु है ही नहीं—यह प्रत्यक्ष करके आप निहाल हो जायँगे। यही दृष्टि श्रीगोपीजनोंकी थी। जहाँ दृष्टि पड़ती थी, वहीं श्रीकृष्ण उन्हें प्रत्यक्ष हो जाते थे।

९—बिलकुल ही अंधेर-खाता है। गीताका पाठ करते हैं, पर उसके श्लोकोंपर विश्वास नहीं। होना भी कठिन है; क्योंकि जब चाह ही नहीं, लगन ही नहीं, तब हो कैसे? मनमें जलन हो, तब तो भगवान्‌के सामने रोयें। पर मनुष्य तो विषयोंमें सुख देखता है। भगवान्‌के ध्यानकी बात सुननेपर केवल मुँहसे कहता है—'हाँ, अच्छी बात है,' पर भीतरसे वह उसे झूठ ही समझता है। नहीं तो, विषय नहीं छूटनेपर मन चौबीस घंटे रोता रहे।

देखिये, आप इस बातका अनुभव करते होंगे कि जब-जब आप भगवान्‌से हटते हैं, तभी-तभी अशान्ति और बढ़ती है। एक बार नहीं, बार-बार यही बात होगी। पर फिर भी जैसे कुत्तेकी पूँछ सीधी होती ही नहीं, वैसे ही मनुष्य विषयके मैलेसे निकलना चाहता ही नहीं। बड़ी दयनीय दशा है। अभी तो इन्द्रियाँ काम कर रही हैं और थोड़ी-बहुत साधना भी हो सकती है—सफलता भी मिल सकती है। मान लें, कुछ भी सफलता न मिले, फिर भी रातको सोते समय मनमें यह अपूर्व शान्ति तो रहेगी ही कि हमने इतनी चेष्टा कर ली। इसीलिये जपमें संख्या रखनेकी बात कही जाती है। आप करके देखें—जिस दिन बीस माला जपते हुए ध्यानकी चेष्टा होगी, उस दिन सोते समय मन आनन्दसे भर जायगा कि 'आज मैंने श्रीप्रिया-प्रियतमको दो हजार बार

याद करनेकी चेष्टा तो की। कम-से-कम पंद्रह सौ बार स्मरण तो हुआ ही होगा। ओह ! पंद्रह सौ बार आज भगवान् याद आये।' बस, यह संख्या आनन्दमें डुबो देगी। फिर संख्या बढ़ेगी। जिस दिन कहीं पाँच हजार बार अधिक सफल चेष्टा हो गयी, तब तो और भी आनन्द आयेगा। आप करके जाँच लीजिये। इस संख्याकी पूर्तिसे भी बड़ा आनन्द आयेगा। अवश्य ही जैसे बताया है, वैसे करनेपर होगा। एक मनका मालाका फिरा कि उसके साथ एक झाँकी बाँधनेकी चेष्टा हुई। इस प्रकार एक माला पूरी होते ही मनमें यह स्फुरणा होगी कि 'सौ बार चेष्टा हुई। अच्छा, बीस बार ठीक नहीं हुई होगी, अस्सी बार तो ठीक हुई होगी। अहा ! कितना आनन्द है, कितने सौभाग्यकी बात है—मुझे अस्सी बार श्यामसुन्दर एवं राधारानी याद आ गये, नहीं, नहीं, अस्सी बार मेरे मनमें आ गये।' इस प्रकार प्रत्येक माला आपके जीवनको उत्तरोत्तर आनन्दसे भर देगी। पर यह बात होगी लगनसे करनेपर तथा विषयोंको भस्म कर डालनेकी दृढ़ धारणा करके चलनेपर।

१०—आज सोच रहा था—मेरा कौन है ? कई स्फुरणाएँ हुईं। लोग पूछते थे कि 'आपका स्वास्थ्य कैसा है ? स्वस्थ हैं न ?' मनमें आया 'स्वस्थ' का क्या अर्थ है; फिर सोचा—व्याकरणके अनुसार तो 'स्व' 'स्थ' अर्थात् जो स्वमें स्थित हो, वह स्वस्थ है। पुनः सोचने लगा—मेरा अपना कौन है ? मनसे उत्तर मिला—श्रीकृष्ण हैं। और कौन हैं ? राधारानी हैं। और कौन हैं ? मनसे पुनः उत्तर मिला—श्रीगोपीजन हैं। और कौन है ? श्रीनित्य दिव्य वृन्दावनधाम है। और भी आगे मनमें कई बातें आयीं, सब कई कारणोंसे बता नहीं सकूँगा। पर इन्हीं बातोंपर आप भी आज विचार कीजिये। इन चारोंके सिवा और कौन-सी वस्तु है, जो आपकी है। जो आपकी है, वह मरनेके बाद भी

साथ रहनी चाहिये। पर यहाँकि तो धन, पुत्र, स्त्री, पद, गौरव—सभी छूट जायँगे, यहाँतक कि शरीर भी छूट जायगा। ये वस्तुएँ आपकी तो हैं नहीं। किंतु इन चारोंको देखिये—श्रीश्यामसुन्दर कभी नहीं छूटेंगे, राधारानी कभी नहीं छूटेंगी, श्रीगोपीजन कभी नहीं छूटेंगे, वृन्दावन भी कभी नहीं छूटेगा, यह इसलिये कि नित्य हैं, नित्य आपके साथ रहते हैं, इनका कभी विनाश, वियोग होता ही नहीं तथा ये बार-बार आपके मनमें आते हैं। यह इनकी कितनी दया है। पर जब आप इन्हें पराया मानकर छोड़ देते हैं और परायेको अपना मानकर इनकी जगह याद करने लगते हैं तब फिर ये छिप जाते हैं। ये सोचते हैं—अच्छी बात है, भाई! तुम हमें चाहते ही नहीं तो क्या करें। तुम याद करते हो, याद करते ही हम तुम्हारे मनमें आकर उपस्थित हो जाते हैं; पर हमारे आनेके बाद भी फिर तुम हमको तो ढँक देते हो और उसकी जगह स्त्री-पुत्र-धनको बैठा देते हो। तब बोलो, हमारा क्या अपराध है?'

११—केवल विश्वास चाहिये। भगवान्‌पर विश्वास होते ही सब काम बना-बनाया है। सकाम-निष्कामकी बात नहीं है। बात है भगवान्‌का भजन करनेकी, विश्वासपूर्वक भगवान्‌को स्मरण करनेकी। फिर चाहे किसी भी कामनासे आप भगवान्‌को क्यों न भजें, आपको श्रीभगवान् ही मिलेंगे। श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवके समान प्रेमकी शिक्षा देनेवाला और कौन मिलेगा? उन्होंने एक जगह स्वयं अपने प्रिय-से-प्रिय शिष्य श्रीसनातन गोस्वामीको शिक्षा देते हुए कहा था—'अन्यकामी यदि करे कृष्णेर भजन' (यदि मनुष्य किसी दूसरी कामनासे भी श्रीकृष्णका भजन करे तो) 'ना माँगि लेओ श्रीकृष्ण तारे देन स्व-चरण' (श्रीकृष्ण न माँगनेपर भी उसे अपने चरणोंको ही दे डालते हैं) ऐसा क्यों? इसपर कहते हैं—'कृष्ण कहे (श्रीकृष्ण कहते हैं)

आमाय भजे (यह मेरा भजन तो करता है) (पर) माँगे विषय-सुख' (माँगता है विषय-सुख)। (ओह !) 'अमृत छाड़ि माँगे विष एइ बड़ मूर्ख' (यह अमृत छोड़कर विष माँगता है—देखो तो, यह कितना मूर्ख है।) (किंतु) 'आमि विज्ञ' (मैं तो मूर्ख नहीं हूँ—मैं तो जानता हूँ, सब कुछ जानता हूँ।) किस बातमें इसका मङ्गल है, किसमें अमङ्गल है—सब जानता हूँ। 'एइ मूर्खे विषय केन दिव' (मैं भला जान-बूझकर इसका हितैषी होकर भी इस मूर्खको विषय देकर ही कैसे टाल दूँ। मैं तो) 'स्वचरण दिया विषय भुलाइब' (इसे अपने चरणोंका प्रेम देकर इसका विषय-प्रेम भुला दूँगा—इसके विषय-प्रेमको नष्ट कर दूँगा)।

सफलता होगी—पर निरन्तर उनको भजनेसे, उनको याद करनेसे। भाव चाहे कुछ भी हो। आप करते नहीं; यही कमी है। वास्तवमें आप चाहते ही नहीं, तब क्या हो।

१२—संत पाकर भी यदि जीवन भगवन्मय नहीं बन रहा है तो दो ही बातें हो सकती हैं। या तो आप जिसे संत मानते हैं, वह संत नहीं है, या आप चाहते नहीं। श्रीगौराङ्ग प्रभुकी शक्तिवाला संत कोई हो तो आपका काम बन सकता है। पर उसमें भी 'सब धान बाईस पसेरी' नहीं होगा। अधिकारीके अनुसार एवं श्रद्धातत्परताके कारण तारतम्य हो ही जायगा। श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने उस मल्लाहको भी प्रेम-दान दिया और रूप, सनातन, रघुनाथ—इन तीनों गोस्वामियोंको भी। पर क्या इनको समान प्रेम मिला ! मल्लाहमें बीज बोया गया और गोस्वामियोंमें फल लगा दिया गया। एक व्यक्ति, मान लें, सर्वशक्तिमान् है। उसे आप चाहते हैं कि बस, 'सब कुछ लेकर मुझे आप अपनेको दे दीजिये।' दूसरा चाहता है—'हमें तो रोटी-कपड़ा

दीजिये।' तीसरा चाहता है—'हमें तो बस, खूब मान-सम्मान दीजिये।' चौथा कहता है—'हमें तो आपकी सेवा चाहिये और कुछ नहीं चाहिये ?' अब वह व्यक्ति है तो बड़ा प्रेमी और उसके पास जो सबसे बढ़िया-से-बढ़िया चीज है वही वह सबको देना चाहता है, पर लेनेवाला चाहता नहीं, वह उसकी दी हुई उस चीजको भी फेंक देता है। इसीलिये वह व्यक्ति सोचता है—'क्या हर्ज है; तुम जो चाहोगे, वही देंगे।' इसमें उसका क्या अपराध है !

१३—प्रेमकी चाह है—यह बड़े सौभाग्यकी बात है। उस इच्छाको छिपाये रखकर जीभसे निरन्तर नाम लीजिये। इसमें कोई परिश्रम नहीं। फिर देखियेगा, यह इच्छा आगकी तरह बढ़ने लगेगी। इसमें प्रयत्न करनेपर निश्चय सफलता होगी ही। मन लगना कठिन है, ठीक है, न सही; पर जीभसे नामका उच्चारण तो चाहनेपर अवश्य होगा। आप एक ही काम करें, शेष सब भगवान् करेंगे—वह काम है जीभसे निरन्तर नाम-जप। अवश्य ही यह भगवत्-कृपापर निर्भर है। परंतु भगवान्‌की आपपर कृपा है, विश्वास कीजिये। पूर्ण कृपा है और यह नामकी साधना निश्चय ही हो सकती है। यदि कोई कहे कि हमसे तो नहीं होती तो समझ लीजिये कि वह असलमें नाम लेना ही नहीं चाहता। एक बहुत बड़े संतने हमसे एक बार कहा था कि 'भगवान् भले ही दूसरी प्रार्थना सुननेमें थोड़ी देर भी कर दें, पर यदि कोई सचमुच चाहे कि हमसे निरन्तर नाम-जप हो और इसके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करे तो यह प्रार्थना निश्चय ही तत्क्षण पूरी हो जायगी।' भगवत्कृपाका अवलम्बन लेकर अपनी पूरी शक्ति लगाइये। शक्ति लगानेपर निश्चय ही नाम-जप होगा। जो ऊँची-से-ऊँची वस्तु है, जिससे परे कुछ भी नहीं है, वह सब बिना परिश्रम मिल जायगी।

आप तो केवल एक व्रत ले लें। चलते-फिरते, सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते, बस, जीभ मशीनकी तरह नामका उच्चारण करती रहे। फिर अपने-आप सब हो जायगा। सारी बात भगवान्‌की कृपासे हो जायगी। मनका पाप धुल जायगा। मनकी चञ्चलता मिट जायगी। विषयानुराग नष्ट हो जायगा। संतके प्रति निश्चल निःस्वार्थ प्रेमभरा आकर्षण उत्पन्न होगा, भगवान्‌पर संशयहीन विश्वास उत्पन्न होगा। इस प्रकार सब कुछ अपने-आप होकर अत्यन्त दुर्लभ वस्तु, जो भगवत्प्रेम है, वह भी सच्ची इच्छा होनेपर मिल जायगा। केवल एक-व्रत—निरन्तर जीभसे नाम। जैसे किसी मशीनका स्विच दबा देनेपर वह अविराम चलती ही रहती है—बड़ी-बड़ी मिलोंमें देखा होगा, वैसे ही जीभको भगवान्‌के नामकी मशीन बना दें। अच्छी बात जो भी मनमें आये, कीजिये, पर जीभसे नाम लेते रहिये। इसके बिना साकार या निराकार—किसी भी प्रकारका ध्यान लगाना बड़ा ही कठिन है। होता क्या है कि अधिकांशतः वृत्तियाँ शून्यमें लीन हो जाती हैं और लोग उसे ध्यान मान लेते हैं। मनमें भगवान्‌का जो भाव हो वही रखें; पर जीभ नाम लेती रहे। केवल एक नामकी शर्त पूरी कर दें।

१४—हमारे जँचनेकी तो एक ही बात है। चाहे जैसे हो, दो कामोंमें एक ही काम कर लेना चाहिये। या तो इस संसारको सर्वथा भूल जायँ तथा मनके सामने निरन्तर श्रीकृष्ण, श्रीराधा, श्रीगोपीजन और श्रीवृन्दावन ही नाचता रहे। अथवा जहाँ-जहाँ दृष्टि जाय, वहीं-वहीं यह दृढ़ भाव, कभी भी नहीं टलनेवाला भाव हो जाय कि जो कुछ दीखता है, जो कुछ सुनायी पड़ रहा है, सब कुछ श्रीकृष्ण है, सब उन्हींकी लीला है। दोमेंसे एक हुए बिना मनका राग-द्वेष मिटना कठिन है और जहाँतक राग-द्वेष है, वहाँतक शान्ति मिलनी कठिन है।

इन दोनोंमें अत्यन्त सहायक होता है—निरन्तर नामका अभ्यास। पर सब बात इसीपर निर्भर है कि हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य भगवान् बन जायँ। यह ठीक-ठीक समझ लें कि जबतक कई और-और लक्ष्य रहेंगे, तबतक रास्ता कट जानेपर भी वह स्थिति सामने आनेमें बहुत विलम्ब लगेगा और जीवनभर कुछ-न-कुछ अशान्ति बनी ही रहेगी। एकमात्र लक्ष्य भगवान् हो जायँ तथा फिर जो भी चेष्टा करें, वह यह ध्यानमें रखकर करें कि यह चेष्टा मुझे अपने लक्ष्यसे गिरानेवाली है या उठानेवाली, तब फिर रास्ता बड़ी शीघ्रतासे कटेगा। उदाहरणके लिये आप...गये। वहाँ जाकर दिन-रातमें आपने अनेकों चेष्टाएँ कीं, खाया-पिया, घूमे, सोये, लोगोंसे मिले। अब विचार करके देखें कि आपने जो भी चेष्टाएँ की हैं, उनमें कौन-सी चेष्टा किस उद्देश्यको लेकर की है। आपने रास्तेमें किसी सज्जनसे बात की। अब बात करते समय आपका एकमात्र लक्ष्य यदि श्रीकृष्ण होंगे तो आपके मनकी दशा दोमेंसे एक प्रकारकी होगी। या तो आपको उक्त सज्जनके रूपमें श्रीकृष्णकी अनुभूति होगी और बात करते-करते आप आनन्दमें मुग्ध होते रहियेगा। अथवा मन बिलकुल उपराम रहनेसे उस समय ऊपरी मनसे तो आप बात करेंगे और भीतरी मन आपका श्रीकृष्णके रूपमें, गुणोंमें, लीलाओंमें लगा रहेगा। ऐसा न होकर यदि आपका और कुछ भाव रहता है तो साफ-साफ यह बात समझ सकते हैं कि आपका लक्ष्य श्रीकृष्ण नहीं हैं। देखें, दिव्य वृन्दावनसे सुन्दर यह स्थान नहीं है। दिव्य वृन्दावनके महलोंसे अधिक सुन्दर यहाँका कोई भी भवन नहीं है। पर जब आपका मन इस भवनके देखनेपर चलता है, तब फिर यह समझ लेना चाहिये कि अभी तो यह वृन्दावन देखना ही नहीं चाहता; क्योंकि यह नियम है कि लक्ष्य श्रीकृष्ण हो जानेपर दिन-रात

मस्तिष्क यही सोचता रहेगा कि कैसे वह रास्ता तय हो। उस समय यहाँका भवन आपको सुहायेगा नहीं। हाँ, यदि यह भाव हो कि सब कुछ श्रीकृष्णकी लीला है, तब तो कुछ कहना बनता ही नहीं। पर इसमें भी एक सावधानीकी आवश्यकता है। बढ़िया-बढ़िया चीजोंको लीला मान लेना आसान है; परीक्षा तो तब होती है, जब गरमी पड़ रही हो, पानी मिले नहीं और मन भीतरसे कहे कि यह भी श्रीकृष्णकी ही एक लीला है। खूब ठंडाई पीनेको मिले, मोटर घूमनेके लिये हो, हाथ जोड़े सेवा करनेवाले खड़े हों, उनमें श्रीकृष्णकी लीला मानना सरल है। इसीलिये आपसे प्रेमवश निवेदन किया है कि कहीं भी जायँ, कुछ भी करें, अपना लक्ष्य न भूलें। हम अमुक काम क्यों करते हैं—यह खूब विचार कर उसे करें।

किसीके यहाँ आप जीमने बैठे हैं। अब उस समय भी आपको यह ध्यान रहेगा कि हम खाते क्यों हैं ? श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये या भोग भोगनेके लिये ? भोग भोगनेके लिये खाना दूसरी तरहका होता है तथा श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये खाना दूसरी तरहका। आप खायेंगे; वे ही चीजें तथा जितनी खाते हैं, उतनी ही खायेंगे; पर श्रीकृष्ण लक्ष्य होनेपर आपका मन उस समय श्रीकृष्णका ही चिन्तन करता रहेगा या परोसनेवालेमें भी आपको श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण दिखायी देंगे तथा आपका मन आनन्दसे भरता ही रहेगा।

यदि आपका लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं तो फिर मनमें संसारके चित्र तो बहुत अधिक पहलेसे ही भरे हुए हैं, अब यहाँके भवनको और क्यों भरें। यह नया मैल ही तो भरेगा। उसकी जगह यदि श्रीकृष्णके उन निकुञ्जोंको याद कर सकें, जो एक-से-एक बढ़कर सुन्दर हैं, जिनकी छायाको भी संसारके समस्त बागीचोंकी सुन्दरता नहीं छू सकती, उन

निकुञ्जोंमें मन फँसायें तो कितना लाभ हो। स्वयं शान्ति पायें तथा अपने पास रहनेवालेको भी शान्ति दें। हाँ, एक बात है। मन है बदमाश। यह रुके नहीं तो एक और उपाय है। जैसे उस महलमें गये थे, वहाँ पता नहीं क्या-क्या देखा। पर जो-जो चीज आपने देखी, उसी-उसीके आधारपर दिव्य वृन्दावनकी कल्पना उसी समय साथ-साथ करते जाते तो जैसे जहरके साथ अमृत भरा जाय वैसे ही इन संस्कारोंके साथ ही एक ऐसी दिव्य चीज मस्तिष्कमें घुसती चली जाती कि वह बहुत काम देनेवाली हो जाती। आपकी बात नहीं, पर प्रायः ऐसा ही होता है कि इन चीजोंको देखते समय भगवान्‌को तो हम भूल जाते हैं और चीज —माया-माया केवल दीखती है—जिसका परिणाम होता है दुःख।

इस मनसे ही तो लड़ना है। इसीमें तो बहादुरी है। इससे कहिये—'यार! अनादि-कालसे तेरे कारण ही मैं श्रीकृष्णसे बिछुड़ा हुआ हूँ। पर अब श्रीकृष्णकी कृपासे तुझे मैं श्रीकृष्णके पास ले जाकर निहाल कर दूँगा। स्वयं निहाल हो जाऊँगा। यह न करके आप मनका कहा करेंगे तो फिर तो, यह अभी आपको भवन देखनेके लिये कहता है, फिर बाजार देखनेको कहेगा, दूकान सम्हालनेके लिये कहेगा। इसपर तो शासन करना होगा। चतुराईसे जैसे यह आपको धोखा देता है, वैसे ही चतुराईसे आप इसे बाँध लीजिये। जब यह बहुत अड़ जाय कि मैं तो अमुक चीज देखूँगा ही और वह पापकी बात न हो तो दिखा दीजिये। पर उसके साथ ही किसी-न-किसी रूपमें श्रीकृष्णको भी जोड़े रखिये, जिससे उस जहरका असर न हो।

अत्यन्त प्रेमसे कहता हूँ, कोई बात अनुचित हो तो क्षमा कीजिये। प्रेमवश कह रहा हूँ। इस शरीरको बिलकुल मनसे उतार देनेकी चेष्टा करनी चाहिये। मामूली सर्दी-गर्मी भी यदि सहन नहीं

होगी तो फिर वृन्दावनमें जीवन कैसे बीतेगा ? वहाँ तो मच्छर खूब काटेंगे। पानी गरम-गरम पीनेको मिलेगा। पासमें यदि पैसा न रहा तो खानेका भी ठिकाना नहीं कि रोज मिले ही। फिर यदि पित्त गरम होनेकी परवा बनी रही तो व्रजमें वास कैसे कर सकेंगे। इसका यह अर्थ नहीं कि खाये-पीये नहीं। अच्छी तरह खाइये, पर मनसे ये चीजें उतर जायँ। लू चल रही है। अब बार-बार सोचिये—'अरे बाप रे ! बहुत लू चल रही है' तो अशान्ति बढ़ेगी। यह न करके सोचिये—'अहा ! क्या ही सुन्दर जीवन दो दिनके लिये मिला है, घर रहते तो इस लूका आनन्द कहाँ मिलता।' फिर मनमें आनन्द होने लगेगा।

भागवतमें कहा है—'आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्र, सभी प्राणी, सभी दिशाएँ, सभी वृक्ष, सभी नदियाँ, नद-समुद्र—ये सब-के-सब, चाहे अचर हों या चर हों—कोई भूत हो—सब श्रीकृष्णके शरीर हैं, यों मानकर अनन्य भावसे सबको प्रणाम करे। अब लू चल रही है, गरमी है; उसमें आग है ही तथा वायु भी है। यदि यह भावना हो जाय कि अग्नि एवं वायुरूपसे मेरे शरीरको श्रीकृष्ण ही छू रहे हैं तो कितना आनन्द हो।

१५—खूब तत्परतासे नित्य वस्तुमें मन डुबाइये। नहीं तो, सच मानिये, इतना पश्चात्ताप हो सकता है कि उसकी कोई सीमा नहीं है। बिलकुल गाँठ बाँधकर रख लें। भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला आदिके सिवा यदि मन कुछ भी चिन्तन करता है तो समझ लें कि घाटेका कोई हिसाब ही नहीं है। अभी पता नहीं लगता, अभी चेष्टा नहीं होती, पर इन्द्रियाँ मरनेके समय इतनी व्याकुल हो जाती हैं कि बिना अभ्यास भगवान्‌में मन स्थिर होना बड़ा ही कठिन होता है। अतः जीवनका शेष समय पूरा श्रीभगवान्‌में लगाइये। बड़ी तेजीसे रास्ता

काटिये, नहीं तो, परिवार-धन-जनमें कहीं मन फँसा रहा और मृत्यु हो गयी तो जीवन बिलकुल व्यर्थ ही हो गया समझिये।

१६—एक भगवान् ही ऐसे हैं, जिनको पकड़ लेनेपर, फिर कभी किसी भी अवस्थामें तनिक भी दुःख नहीं होता। जो जितने अंशमें पकड़ लेता है, उतने अंशमें उसका दुःख कम हो जाता है तथा पूरा पकड़ लेनेपर दुःख बिलकुल नहीं रह जाता। अब आप देखें—लोग बेचारे कितने दुःखी रहते हैं। यदि उनमेंसे कोई भगवान्‌को पकड़ ले तो वह दुःखी नहीं होगा; क्योंकि उसके मनमें यह दृढ़ विश्वास रहेगा कि परम सुहृद् सर्वशक्तिमान् भगवान् मेरे साथ हैं; फिर क्या डर है। आप निश्चय समझिये, जो काम आपके लिये सर्वथा असम्भव है, भगवान् चाहें तो क्षणभरमें उसे कर दे सकते हैं। उनके लिये कोई ऐसा काम ही नहीं है, जिसे वे न कर सकें। केवल विश्वास चाहिये। एक कथा आती है—महाप्रभु श्रीचैतन्य कीर्तन कर रहे थे श्रीवासजीके आँगनमें। श्रीवासजीका लड़का मर गया; पर श्रीवासजीने स्त्रियोंसे कहा कि 'यदि रोओगी तो महाप्रभुका कीर्तन भङ्ग हो जायगा और यह हुआ तो मैं गङ्गामें डूबकर प्राण दे दूँगा।' स्त्रियाँ डर गयीं। अब बेटा भीतर मरा पड़ा है और आँगनमें कीर्तन करते हुए महाप्रभु नाच रहे हैं; पर धीरे-धीरे और लोगोंको यह बात मालूम हो गयी, सबका उत्साह कम होने लगा और सब धीरे-धीरे नाचना छोड़कर बैठ गये। महाप्रभुको बहुत देर बाद बाह्यज्ञान हुआ। वे बोले—'क्या बात है ? मालूम होता है, कोई अनिष्ट घटना घट गयी है।' लोगोंने उनसे सारी बात कह दी। महाप्रभुने लड़केके शवको मँगवाया और लगे नाचने। लड़केमें प्राणका संचार हो गया। श्रीवासने देखा—यह तो गजब हो गया, इस लड़केका बड़ा सौभाग्य था कि उसकी ऐसी मृत्यु हुई थी। लड़का बातें

करने लगा। फिर श्रीवासने प्रार्थना की कि—'महाप्रभु! ऐसा मत करो।' इसके बादकी ठीक घटना हमें याद नहीं; शायद जब घरके सभी लोगोंको संतोष हो गया कि इसको मरनेका ऐसा सौभाग्य और नहीं प्राप्त होगा, तब फिर महाप्रभुने कहा—'अच्छा, यही सही।' यह इसलिये हुआ था कि श्रीवासका यह भाव था कि महाप्रभु साक्षात् भगवान् हैं। पर श्रीवासके लिये प्रभुने वैसा नहीं किया था। किया था उस लड़केकी माताके संतोषके लिये। ऐसी कोई घटना नहीं है कि जिसे भगवान् न कर सकें।

१७—जहाँ भगवान् एवं संतमें विश्वास है, वहाँ सब कुछ सम्भव है। गोपी-प्रेमके उपासक एक बहुत बड़े संत नरोत्तमदास हो गये हैं। वे जातिके कायस्थ थे। पर ब्राह्मण लोग उनको बहुत मानते थे। इसपर ब्राह्मणोंकी एक बहुत बड़ी टोलीने उनका विरोध किया। बहुत-से ब्राह्मण शिष्य भी थे, उन्हें बड़ा दुःख हुआ। आखिर नरोत्तम-दासजीकी आयु समाप्त हुई। वे गङ्गातटपर मरे। मरते समय बोली बन्द हो गयी। फिर तो ब्राह्मणोंकी एक बहुत बड़ी भीड़ने मजाक उड़ाना शुरू किया। कोई कहता—'बहुत ठीक हुआ, बड़ा भक्त बना था।' कोई कुछ कहता, कोई कुछ। उनका शरीर छूट गया, पर उनके ब्राह्मण शिष्योंको बड़ा दुःख हुआ। एक शिष्य बड़ा विश्वासी था। वह ब्राह्मण था। उसने मन-ही-मन प्रार्थना की 'गुरुदेव! एक बार जी उठिये तथा इन सभी ब्राह्मणोंका उद्धार करके जाइये।' उसकी प्रार्थना सच्चे हृदयकी थी। बिलकुल जलानेकी तैयारी हो ही रही थी कि नरोत्तमजी धीरे-धीरे उठ बैठे और लगे हँसने। अब तो ब्राह्मणोंके होश गुम हो गये; क्योंकि उन्होंने बहुत गालियाँ दी थीं। आखिर एक-एक ब्राह्मणने आकर क्षमा माँगी और सब शिष्य हुए। सबने उनसे श्रीकृष्णमन्त्रकी दीक्षा ली।

इसके बाद सात दिनके लगभग वे जीते रहे। अन्तिम दिन बोले—'मुझे गङ्गामें ले चलो।' गङ्गामें जाकर खड़े हुए शिष्योंसे कहा—'मेरा शरीर मलो।' शिष्योंने शरीर मलना शुरू किया। ऐसा मालूम हुआ मानो शरीर दूधका पुतला था, पानीमें घुल गया।

१८—चार चीजें हैं, जो बिना श्रद्धाके भी काम देती हैं (१) नाम, (२) धाम, (३) लीला, (४) संत। इसमेंसे किसीके साथ प्राणकी बाजी लगाकर जुड़ जाय। १.नामसे जुड़े तो फिर ऐसा हो जाय कि प्राण छूटे, पर नाम नहीं छूटे। २.धामसे जुड़े तो ऐसा जुड़े कि चाहे बम बरसे, व्रज-रजपर ही प्राण छोड़ेंगे, यहाँसे बाहर नहीं जायँगे। ३.लीलासे जुड़े तो ऐसा जुड़े कि इस जगत्‌को बिलकुल भूल जाय—यहाँतक कि चर्मचक्षुसे भी हर जगह लीला-ही-लीला देखें। ४.संतसे जुड़े तो ऐसा कि प्राण रहते तो अलग नहीं होऊँगा, मुर्दा शरीर ही अलग होगा। ऐसा होनेपर ही श्रीप्रियाप्रियतमकी कृपा प्रकट होती है।

१९—भगवान् सबकी सँभाल करते हैं, फिर जो उनका हो गया है, उसकी करें—इसमें कहना ही क्या है। एक संतकी बात है। वे बदरीधाम जा रहे थे। रास्तेमें टट्टी लगने लगी। चालीस-पचास टट्टियाँ लगीं। अब साथियोंने तो उन्हें छोड़ दिया। वे बेचारे रास्तेसे कुछ हटकर जंगलमें एक गुफामें जाकर पड़ रहे। दूसरे दिन एक बूढ़ा आया एक पुड़िया दवा और दही-भात लेकर। संतने दवा खा ली और दही-भात खा लिया। तीन-चार दिन वह रोज दवा और दही-भात लाता रहा और वे खाते रहे। तीन-चार दिन बाद उनके मनमें कौतूहल हुआ कि यह कौन है; अतः जब वह दही-भात लेकर आया, तब उन्होंने उससे पूछा—'तुम कौन हो?' उसने कहा—'इससे तुम्हें

मतलब ? दवा ले लो, दही-भात खा लो।' संत बोले—'पहले बताओ कि तुम कौन हो।' वह बोला कि—'यह नहीं बताऊँगा।' बाबा बोले—'मैं भी दही-भात नहीं खाऊँगा।' उसने कहा—'मत खाओ' और यों कहकर वह लौटने लगा। पुनः कुछ देर बाद आया और बोला—'खा लो।' बाबा बोले—'बताओ।' आखिर वहीं उस बूढ़ेकी जगह भगवान् प्रकट हो गये। संत बोले—'महाराज ! कुछ अनुमान हो गया था कि इस भयानक जंगलमें आपके सिवा और कौन होगा। पर नाथ ! क्या स्वयं आप इस प्रकारकी सेवा भी करते हैं ?' भगवान्‌ने कहा—'जहाँ कोई होता है, वहाँ तो प्रेरणा कर देता हूँ, नहीं होता तो स्वयं आता हूँ।' यह सच्ची घटना है और कुछ ही समय पहलेकी बात है।

२०—दक्षिणमें एक भक्त हुए हैं; वे भगवान्‌के बहुत ही विश्वासी थे, गाँवके जमींदार थे। एक साल अकाल पड़ा। कोठेका अनाज तो बाँट ही दिया, अपना मकानतक बेचकर गरीबोंको लुटा दिया। स्त्री-पुरुष पेड़के नीचे रहने लगे। उनका नियम था—एकादशीका उपवास करना फिर द्वादशीके दिन ब्राह्मण-भोजन कराके तब पारण करना। एकादशीके दिन वे पंढरपुर जाया करते थे। इस बार भी गये, दर्शन किया, किंतु पासमें कुछ नहीं था। कुछ दिन पहले बहुत धनी थे, पर आज फूटी कौड़ी भी पास नहीं थी। लकड़ी बेचनेसे तीन पैसे मिले। एक पैसाकी फूल-माला ली, एक पैसेका प्रसाद चढ़ा दिया तथा एक पैसा दक्षिणामें दे दिया। दूसरे दिन लकड़ी बेचनेपर फिर तीन पैसे मिले। उनका आटा ले लिया, पर अब केवल आटेका निमन्त्रण स्वीकार करनेके लिये कोई ब्राह्मण तैयार नहीं हुआ। दो पहर हो गया। एक-एक करके ब्राह्मण आते, पर खाली

आटा देखकर अस्वीकार कर देते। अन्तमें भक्त-दम्पति मनमें सोचने लगे—'प्रभो! हमारा नियम क्या आज भङ्ग होगा?' इतनेमें एक ब्राह्मण आया, जो अत्यन्त बूढ़ा था। बोला—'पटेल! बड़ी भूख लगी है।' उस बेचारेने लजाकर कहा—'महाराज! मेरे पास तो केवल आटा है।' ब्राह्मणने कहा—'फिर क्या चाहिये। यहींसे थोड़े कंडे इकट्ठे कर लें। मैं बाटी बनाकर खा लूँगा।' यही हुआ, बाटी बनने लगी। इतनेमें एक बुढ़िया आयी। ब्राह्मण बोले—'बड़ा अच्छा हुआ, पटेल! यह मेरी स्त्री है, हम दोनों प्रसाद पा लेंगे।' पटेल लज्जित हो गये, सोचने लगे—'एक आदमीके लिये भी आटा पर्याप्त नहीं है, दो कैसे जीमेंगे। पर भगवान्‌की लीला थी, बाटी बनायी गयी और ब्राह्मणने कहा—'एक पत्तल तुम अपने लिये भी ले लो। पटेल बड़े विचारमें पड़ गये। अन्ततोगत्वा बहुत कहने-सुननेके बाद ब्राह्मण-ब्राह्मणी जीमने लगे। कुछ खाकर अन्तर्धान हो गये। पटेल बड़े चकित हुए। प्रसाद पाकर मन्दिरमें दर्शन करने गये। वहाँ भगवान् प्रत्यक्ष चिन्मयरूप धारणकर बात करने लगे। बहुत बातें हुईं। अन्तमें भगवान् बोले—'भाई! हमें ऐसी ही बाटियाँ खानेमें आनन्द आता है।' पटेलने पूछा—'महाराज! तब क्या आप बड़े-बड़े यज्ञोंमें नहीं जाते?' भगवान्‌ने कहा—'वे लोग हमको खिलाना ही नहीं चाहते।' पटेलसे भगवान्‌ने फिर कहा—'कल तमाशा देखना, उसी ब्राह्मणके वेशमें मैं कल अमुक जगह जाऊँगा; देखना, मेरी कैसी पूजा वहाँ होती है।'

एक बहुत बड़े धनीके यहाँ यज्ञ था। हजारों ब्राह्मणोंका निमन्त्रण था। ठीक जीमनेके अवसरपर वे ही बूढ़े बाबा पहुँचे और बोले—'जय हो दाताकी। एक पत्तल हमें भी मिल जाय। बहुत भूखा हूँ।' लोगोंने पूछा—'आपको निमन्त्रण मिला है?' ब्राह्मण बोले—

'निमन्त्रण तो नहीं मिला, पर हूँ बहुत भूखा; बड़ा पुण्य होगा।' ब्राह्मणकी एक बात भी उन लोगोंने नहीं सुनी। आखिर ब्राह्मण जबर्दस्ती एक पत्तल लेकर बैठ गये। अब तो धनिक बाबूके क्रोधका पार नहीं रहा। उन्होंने हाथ पकड़कर ब्राह्मणको निकलवा दिया। पटेल देख रहे थे। बूढ़े ब्राह्मण पटेलको इशारा करके कह रहे थे—देखा—'हमारा सत्कार कैसा होता है ?' फिर कहा—'अब देखो क्या होता है।' उसी समय बहुत जोरकी आँधी आयी, बड़े-बड़े ओले गिरने लगे। सारा यज्ञ नष्ट हो गया ! एक ब्राह्मण भी भोजन नहीं कर सका। कथा बहुत विस्तारसे एवं बहुत लम्बी है। सारांश यह कि किसी भी दुःखीको देखकर उसमें विशेषरूपसे भगवान्‌को देखना चाहिये।

२१—असलमें तो आर्त्त भक्त, अर्थार्थी भक्त भी बनना बड़ा कठिन है। कोई सच्चा आर्त्त, सच्चा अर्थार्थी हो जाय, तब तो फिर क्या पूछना ! उसका दुःख भी मिट जाय एवं भगवान्‌को पाकर वह कृतार्थ भी हो जाय—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। आर्त्त भक्त हो चाहे अर्थार्थी, उसमें अनन्यनिष्ठा होनी ही चाहिये। अनन्यनिष्ठाका अर्थ यह कि और सभीपरसे—सभी साधनोंपरसे भरोसा उठाकर मनमें यह निश्चय कर ले कि 'मेरा यह काम तो भगवान् ही पूरा करेंगे।' मान लें हमें कोई बीमारी है। अब यदि ठीक-ठीक मनमें यह निश्चय हो कि यह बीमारी प्रभुसे ही दूर करवानी है तो निश्चय मानिये प्रभु उसे दूर कर देंगे। पर यदि कोई कहता है कि प्रभु तो दूर करेंगे ही, पर निमित्त तो दवा बनेगी। तो समझ लीजिये कि असलमें उसका विश्वास भगवान्‌पर नहीं है, विश्वास दवापर है। फिर भगवान् भी जब अच्छा करेंगे तब सीधे जादूकी तरह नहीं करेंगे किसी दवासे ही करेंगे। ऐसा न होकर यदि यह धारणा कर लें कि दवासे क्या होगा, प्रभु अच्छा

करेंगे; तो सच मानिये बिना दवाके कठिन-से-कठिन रोग—जिसका अच्छा होना असम्भव मान लिया गया है, अच्छा हो सकता है और एक क्षणमें ऐसा हो सकता है मानो उस बीमारीका कोई चिह्न भी नहीं रह गया हो—मानो वह बीमारी कभी हुई न थी।

इसी प्रकार अर्थार्थी भक्त भी भगवान्‌की कृपा पाकर एक क्षणमें निहाल हो सकता है तथा एक क्षणमें एक अत्यन्त दरिद्रको भगवान् अरबपति, असंख्यपति बना सकते हैं। कोई कहे कि 'मैं धनके लिये भजन करता हूँ' तो उसे सोचना चाहिये कि मेरी निष्ठा भगवान्‌पर है या नहीं। यदि निष्ठा है तो उसकी यह पहचान है। कोई उसे आकर यह कहे कि 'हम गारंटी करते हैं—तुम यह सौदा कर लो, तुम्हें जरूर लाख रुपये मिल जायँगे। नहीं मिले तो हम लाख रुपये तुम्हें अपने पाससे देंगे।' इसपर भी यदि उसका मन न डिगे तथा वह यह न स्वीकार करके भजन ही करता रहे, तब वह सच्चा अर्थार्थी भक्त है और उसके लिये फिर भगवान् अपना सम्पूर्ण भंडार खोलकर उसे निहाल कर देंगे। आजकल लोग भजन तो करते हैं, दो-चार माला जपते हैं, पर साथ ही सौदे-सट्टेमें भी रुपया लगाते रहते हैं। यह अर्थार्थी भक्तका लक्षण तो है नहीं; इसी कारण आजकल न तो आर्त्त भक्तके लिये जादूका-सा खेल भगवान् करते हैं और न अर्थार्थीको ही जादूकी तरह कोटिपति बनाते हैं।

२२—भगवान्‌से सच्चे मनसे प्रार्थना कीजिये—'मेरे नाथ! यदि आप मुझे इसी गिरी अवस्थामें देखना पसंद करते हैं, इस प्रकारसे निरन्तर मेरे मनमें अशान्ति बनी रहने देनेमें ही आपका चित्त प्रसन्न होता है—बार-बार मेरे सामने आप आते हैं और आपका मैं तिरस्कार कर देता हूँ, यदि इसी घृणित अवस्थामें मुझे रखकर आप प्रसन्नताका

अनुभव करते हैं तो फिर अपनी इच्छा पूर्ण करते हो, नाथ ! क्योंकि आप यदि ऐसा चाहते हैं तो इसीमें मेरा परम मङ्गल है। पर यदि ये सब दोष मेरी कमीके कारण होते हों—मेरी तत्परताकी कमीके कारण, मेरे अविश्वासके कारण होते हों तो प्रभो ! अब बहुत हो चुका। नाथ ! अब कृपा करके इसी क्षण इन्हें मिटा दो। मैं अबोध हूँ, अज्ञानी हूँ, पतित हूँ; मुझे पता नहीं कि मेरे मनमें ये दोष किस कारणसे आते हैं। इनके मिटानेका उपाय तो सुनता हूँ; पर उसका आचरण भी मुझसे नहीं होता। क्यों नहीं होता, इसका कारण भी मैं नहीं जानता। अतएव हे दयाके सागर ! अब मेरी ओर निहारो और फिर जो उचित हो, करो। शान्ति यदि मेरी कमीके कारण मुझे नहीं मिल रही है तो फिर मेरी कमीको मिटा दो, इसी क्षण मिटा दो, और यदि तुम्हारी इच्छासे शान्ति नहीं मिल रही हो, तब तो मुझे कुछ कहना है ही नहीं; यह अशान्ति ही मेरा परम प्रिय धन है—मैं ऐसा अनुभव करने लगूँ; क्योंकि तुम मेरे स्वामी हो, तुम्हारा मुझपर पूर्ण अधिकार है। मैं तुम्हारी वस्तु हूँ, तुम जैसे रखना चाहो, वैसे ही रखो।'

यह है प्रेममिश्रित भावकी प्रार्थना। यह नहीं हो और शान्ति चाहिये—जैसे भी हो, शान्ति मिलनी चाहिये तो फिर यह कामना सीधे शब्दोंमें करके यही माँगना चाहिये कि 'हमको शान्ति दो, हे नाथ ! शान्ति चाहिये, शान्ति दो।' शान्ति पानेके लिये यही सर्वोत्तम उपाय मैं जानता हूँ, करता हूँ। वही मैंने आपको भी बतला दिया।

२३—यदि उनपर विश्वास न होता हो तो यह भी उन्हींसे कहिये। उन्हींसे पूछिये—'नाथ ! कहाँसे विश्वास लाऊँ ? पैसेसे खरीदनेकी चीज तो यह है नहीं। तुम कह सकते हो, उपाय बतलाता हूँ उसे करो। पर नाथ ! उपाय, पता नहीं क्यों मुझसे नहीं होते। सुन

लेता हूँ, यत्किंचित् करनेकी भी चेष्टा करता हूँ, पर वे मुझसे हो नहीं पाते, ठीक मौकेपर मैं फेल हो जाता हूँ, अब तुम्हीं बताओ नाथ ! क्या करूँ ? यदि तुम कहो कि काम, क्रोध, लोभको मेरे बलपर डाँटो तो नाथ ! मेरा आपके बलपर यथार्थ विश्वास ही नहीं होता। क्या करूँ ?'

२४—सोचकर देखिये, हृदयकी बात किससे कहें ? कौन ऐसा है, जो सर्वसमर्थ है और हमारी सहायता कर सकता है ? तो यही उत्तर मिलेगा—एकमात्र प्रभु ही ऐसे हैं। उनमें शक्तिकी कमी नहीं। वे हमारे मित्र भी हैं तथा उन्हें हमारी इस घृणित दशाका पूरा-पूरा पता भी है। फिर उनको छोड़कर और किसकी शरणमें जायँ ? सूरदासने गाया है—*'तुम तजि और कौन पै जाऊँ ?'* काम, क्रोध, लोभसे तंग आकर कहिये—काम, क्रोध, लोभ—ये तीनों, क्या नाथ ! आपसे अधिक शक्तिशाली हैं ? नहीं हैं। आपको यह पता भी है कि इसको ये तंग करते हैं। आप मेरे मित्र भी हैं तथा आपमें इन्हें मार डालनेकी शक्ति भी है—फिर मेरी ऐसी घृणित दशा क्यों है ? मैं नहीं जानता, आप ही जानें। सार बात यह है कि किसी प्रकार भगवान्‌से जुड़िये; चाहे सकाम-भावसे ही सही।

२५—पार्वतीजीने पूछा—'मुझे श्रीकृष्णकी महिमा कुछ बताइये।' शंकरजीने कहा—'देवी ! जिसके चरणनखकी महिमाका वर्णन असम्भव है, उसकी महिमा क्या बताऊँ।' फिर बोले—'सुनो, प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक ब्रह्मा, एक विष्णु और एक मैं—शंकर रहते हैं। हम तीनों-के-तीनों उन श्रीकृष्णकी कलाके करोड़वें अंशसे उत्पन्न होते हैं। इतने तो वे प्रभावशाली हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक कामदेव रहता है। वह इतना सुन्दर है कि समस्त ब्रह्माण्डको मोहित किये रहता है।

पर उसमें जो सुन्दरता है, वह श्रीकृष्णकी सुन्दरताका करोड़वाँ-करोड़वाँ अंश है। वे इतने सुन्दर हैं। उनके शरीरसे इतना तेज, इतनी चमक निकलती है कि प्रत्येक ब्रह्माण्डमें जितने सूर्य हैं, सब-के-सब उस चमकके करोड़वें अंशसे प्रकाशित होते हैं। उनमें श्रीकृष्णकी अङ्ग-प्रभाके करोड़वें अंशसे प्रकाश आता है। जगत्‌में जितनी मनको मोहनेवाली सुगन्धियाँ हैं, सुगन्धित फूल हैं, सबमें श्रीकृष्णके अङ्ग-गन्धके करोड़वें अंशसे गन्ध आती है। और बहुत-सी बातें बतायी हैं—ये सब कविकी कल्पना नहीं, ध्रुव सत्य हैं तथा सचमुच ही किसीको श्रीकृष्णके ऐश्वर्य-सौन्दर्य-माधुर्यपर विश्वास हो जाय तो फिर उसको जीवनमें केवल श्रीकृष्णकी ही चाह रहेगी, बाकी चाहें सब मिट जायँगी।'

२६—आप सात बातोंके लिये प्राणोंकी बाजी लगाकर चेष्टा कीजिये। प्रेम उत्पन्न होनेके पहिले ये सात बातें अवश्य हो जाती हैं, तब प्रेम प्रकट होता है। नहीं तो आप हो या कोई हो, रास्ता तय करना बड़ा कठिन है।

प्रेम न बाड़ी नीपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय॥

—यह बिलकुल सत्य है। बहुत बात कर लेंगे, लीला भी सुन लेंगे, लाभ भी थोड़ा होगा ही, पर इन सातके आये बिना वास्तविक प्रेम प्रकट ही नहीं होता। यह ठीक है कि पूर्णरूपसे ये सात बातें तो तभी होती हैं, जब भगवान्‌का साक्षात्कार हो जाता है; पर उसके पहले साधकको चाहिये कि वह इनको अपने अंदर पूरी-पूरी उतारनेके लिये सम्पूर्ण प्रयत्न करे। वे बातें ये हैं—

(१) शान्ति रखना—इसके लिये शास्त्रमें दृष्टान्त आता है कि

राजा परीक्षित् बिना अन्न-जलके सात दिन कथा सुनते रहे, पर उनमें शान्ति इतनी थी कि अन्न-जल उन्हें याद ही नहीं आता था।

(२) भगवान्‌के भजनके सिवा और किसी काममें समय बिलकुल नहीं लगाना।

(३) संसारके समस्त भोगोंसे ऐसा वैराग्य हो जाय कि ये विष्ठा-सेदीखने लग जायँ। जिस प्रकार विष्ठाको देखकर घृणा होने लगती है; मुँह-नाक बंद करके हम चलते हैं कि कहीं दुर्गन्ध न आ जाय, ठीक उसी प्रकार समस्त भोगोंसे आन्तरिक घृणा हो जाय।

(४) मनमें अपने अंदर मानका बिलकुल भाव ही न रहे। शास्त्रमें दृष्टान्त आता है कि राजा भरत जब प्रेमके लिये व्याकुल हुए तब वे इतने अधिक मानशून्य हो गये थे कि राज्य करते समय जिन-जिन राजाओंपर विजय प्राप्त की थी, जिन-जिनसे उनकी शत्रुता थी, उन्हींके घरमें जाते थे और उनकी दी हुई रोटीके टुकड़े माँग-माँगकर पेट भरते हुए भजन करते थे—और अपने शत्रुको ही नहीं, चाण्डालतकको प्रणाम करते थे।

(५) दिन-रात मनमें यह विश्वास, यह भरोसा बढ़ता रहे कि मुझे श्रीकृष्ण अवश्य-अवश्य मिलेंगे। यह विश्वास मनसे एक क्षणके लिये भी दूर न हो।

(६) निरन्तर नामका गान अतिशय प्रेमसे हो, भाररूपसे नहीं—मालाकी संख्या पूरी करनेके लिये नहीं; बल्कि नाम इतना प्यारा लगे कि प्राण भले छूट जायँ, पर नाम नहीं छूटे।

(७) जहाँ-जहाँ भगवान्‌की लीलाएँ हुई हैं, उन-उन स्थानोंमें अतिशय प्रेम हो।

ये सात बातें तो धारण करनेकी हैं और चार बातें विघ्नरूप हैं,

जिनसे बचनेकी चेष्टा प्राणोंकी बाजी लगाकर करनी चाहिये। ये चार बातें ही प्रेमकी प्राप्तिमें बाधक होती हैं। जहाँ ये छूटीं कि बस, प्रेमका रास्ता बड़ी शीघ्रतासे तय होने लगता है। इनको शास्त्रमें 'अनर्थ' कहते हैं, जो असलमें भगवान्‌से हटाते रहते हैं। वे चार ये हैं—

(१)**दुष्कृतजात अनर्थ**—अर्थात् पूर्वजीवनमें तथा इस जीवनमें जो-जो बुरे कर्म किये हैं, उनके संस्कार मनपर जमा रहते हैं और वे बार-बार बुरे कर्मोंकी स्फुरणा कराकर साधकको बुराईकी ओर घसीट ले जाते हैं। अतः पहले जो हो चुके उनके लिये तो क्या किया जाय; पर अब यह पूरा ध्यान रखना चाहिये कि बुरे कर्म हमारे द्वारा भूलसे भी, कभी भी न हों। झूठ-कपट आदि सभी बुरे कर्म मार्गसे बहुत दूर हट जायँ।

(२)**सुकृतजात अनर्थ**—अपने जो पूर्वजीवनमें एवं इस जीवनमें पुण्य किये हैं, उनके फल आकर बाधा डालते हैं—जैसे पुण्यके फलसे आपको धन-मान प्राप्त हो गया है, जो आपके मार्गमें बाधा दे रहा है। इससे बचनेका उपाय यह है कि सच्चे मनसे भगवान्‌को अपने सब पुण्य समर्पण कर दिये जायँ तथा भीतरी हृदयसे उनका फल नहीं चाहा जाय।

(३)**अपराधजात अनर्थ**—दस प्रकारके नामापराध एवं चौंसठ प्रकारके सेवापराधोंसे, जहाँतक हो बचना चाहिये। ये इतने भयानक दोष हैं कि 'बहुत ऊँचे उठे हुए साधकोंको भी नीचे गिरा देते हैं। इनसे बचनेका उपाय है—सच्चे मनसे भगवान्‌से प्रार्थना करना कि 'हे नाथ! मुझे अपराधसे बचाओ' तथा जान-बूझकर कभी अपराध न करनेकी पूरी चेष्टा करना। अबतक बहुत अपराध हो चुके हैं और अब भी होते हैं, इसीलिये रास्ता रुक रहा है।'

(४) **भक्तिजात अनर्थ**—यह विघ्न आपको कम सतायेगा। यह हमारे-जैसे संन्यासी तथा साधकोंको बहुत तंग करता है। यह है भक्ति करके उसके द्वारा सम्मान-बड़ाई, पूजा-प्रतिष्ठा चाहना। इससे भी मार्ग रुक जाता है।

इन चारों अनर्थोंसे बचते हुए उपर्युक्त सातोंको धारण करनेकी चेष्टा करें। खुशामदकी बात दूसरी है; पर सच बात तो यह है कि रास्ता तय करना हो तो फिर ये काम अवश्य कीजिये। मेरा तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, मैं आपसे जो बातें कहूँगा, उनसे मेरा तो लाभ ही होगा। पर आपका रास्ता मेरी समझसे तो तभी तय होगा, जब आप कमर कसकर चलनेके लिये तैयार हो जायँगे।

धन, स्त्री, शरीरका अभिमान रत्ती-रत्ती चूर हुए बिना रास्ता नहीं कटेगा। खूब तेजीसे चलिये, नहीं तो मर जाइयेगा। मरते समय चित्तकी वृत्ति जहाँ रहेगी, वहीं आप चले जायँगे। मकान, रुपया, धन, परिवार, मान-बड़ाई—सब-के-सब या तो आपको पहले ही छोड़ देंगे या आप इनको छोड़कर चले जायँगे। विष्ठा-मूत्रसे भरा हुआ यह शरीर मिट्टीमें मिल जायगा। इसे जानवर खा जायँगे तो यह विष्ठा बन जायगा। जलाया जायगा तो इनकी राख हो जायगी और गाड़ दिया गया तो सड़कर कीड़ोंके रूपमें परिणत हो जायगा। इसके आरामकी तथा विलासकी चिन्ता छोड़िये।

ये बातें केवल सुननेकी नहीं हैं, करनेसे होगा, बड़ी तत्परतासे करनेपर होगा। नहीं तो सुनते रहिये—न शान्ति मिलेगी, न दुःख मिटेगा। प्रेम तो कहाँसे मिलेगा!

आप नित्य ये सब बात सुनते हैं, फिर भी आपकी रुपये एवं परिवारकी ममता तथा अभिमान नहीं मिटते। इसका अर्थ यह है कि

अभी आप रास्तेपर चलनेके लिये तैयार नहीं हैं। यदि प्रत्येक बार आप मनको दण्ड देने लगें तो फिर यह मन सीधा हो जाय।

२७—असल बात है—सच्ची तीव्र-से-तीव्र लालसाका होना। यह हुई कि उसी क्षण सारा नकशा पलट जायगा। अभी चाह है, पर मन्द-से-मन्द है। जितनी परवा संसारकी वस्तुओंके लिये है, उतनी भी नहीं है। आप कुछ भी करें—देखें, श्रीकृष्णसे छिपा तो है नहीं; वे सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वसमर्थ हैं और उनमें अपार करुणा भी है। फिर आप उनके सामने रोते क्यों नहीं, रोना क्यों नहीं आता ?·····का लड़का बीमार था। मनमें कितनी व्याकुलता थी, रात-दिन मस्तिष्कमें एक ही बात थी। 'हे राम ! लड़का ठीक हो जाय।' रोना सीखना नहीं पड़ता था। अपने-आप रोना आता था। जिस दिन जीवन श्रीकृष्णप्रेमके बिना सूना दीखेगा, उनका वियोग असह्य हो जायगा, उस दिन रोना स्वयं अपने आने लग जायगा। वैसी लालसा ही नहीं है। इसीलिये न तो रोना आता है और न उतनी परवा ही होती है। बिलकुल ठीक मानिये—घर, धन, परिवार, पुत्र—सभी फिर इतने फीके लगने लगेंगे कि मानो इससे कैसे हमारा पिण्ड छूट जाय। पर अभी तो आप स्वयं इच्छा करके मन चलाकर इनको पकड़ते हैं। इसका अर्थ यही है कि आपको उनकी लालसा नहीं है; और जब लालसा ही नहीं है, तब फिर कहाँसे लायें ? मोल तो वह मिलती नहीं। इसके लिये संतलोग अपने अनुभवसे यह कहते हैं कि 'मलिन अन्तःकरणमें यह लालसा उत्पन्न ही नहीं होती।' हमारा अन्तःकरण मलिन है, इसीलिये यह लालसा उत्पन्न नहीं हो रही है। जिस क्षण यह लालसा उत्पन्न हुई कि उसी क्षण भगवान्‌में भी लालसा उत्पन्न हो जायगी। अतः अन्तःकरणको निर्मल बनानेकी चेष्टा ही कर्तव्य होता है, पर हमारा अन्तःकरण

निर्मल हो, यह लालसा भी तीव्र नहीं है; क्योंकि उसके जो उपाय हैं, उनका आचरण जब हमसे नहीं होता, तब कैसे कहा जाय कि हम चाहते हैं कि हमारा अन्तःकरण निर्मल हो। फिर भी संतलोग तथा शास्त्र कहते हैं कि 'घबराओ मत। यदि एक बार भी भगवान्‌की ओर झूठी-मूठी प्रवृत्ति भी तुम्हारी हो गयी है तो फिर तुम भले ही भगवान्‌को छोड़ दो, भगवान् तुम्हारा पिण्ड नहीं छोड़ेंगे।'

आपको विश्वास करा देना तो कठिन है, पर एक बिलकुल सच्ची बात आपको बतला रहा हूँ। बहुत ही मर्मकी बात है कि कैसे एक नाम लेनेसे ही मनुष्य तर जाता है। भगवान्‌में नाम-नामी, देह-देहीका भेद नहीं है। जो इस बातको मान लेता है, उसको समझानेका तरीका तो दूसरा है; पर जो यह नहीं मानता, उसके लिये दूसरा तरीका है। अवश्य ही उसे शास्त्र एवं भगवद्वचनोंपर कुछ-न-कुछ विश्वास तो होना ही चाहिये। नहीं तो, फिर नास्तिकको समझाना तो बड़ा ही कठिन है। भगवान् कहते हैं—

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

अब इसके अनेक अर्थ होते हैं। एक यह अर्थ भी निकाला जा सकता है कि 'जो मेरा नाम निरन्तर लेगा, उसका नाम मैं निरन्तर लूँगा।' अच्छी बात है—नाथ! मुझसे निरन्तर नाम नहीं लिया जाता, मैंने जीवनभरमें एक बार आपका नाम लिया है तो एक बार बदलेमें आपने मेरा नाम लिया होगा। अब यदि यह प्रश्न होता है कि तुमने मनसे नहीं लिया था। वाणीसे यों ही निकल गया था तो ठीक है, आपने भी बदलेमें एक बार वाणीसे ही मेरा नाम लिया होगा, पर नाथ! आपमें मेरी तरह वाणी और मनका भेद तो है नहीं। (भगवान्‌की वाणी और मन एक है) आप मेरे नाम लेनेके बदलेमें

केवल वाणीसे भी मेरा नाम लेते हैं, तो मेरा निश्चय उद्धार हो गया।

अब असल बात भी यही है। जिस क्षण एक नाम निकलता है, उसी क्षण भगवान्‌की सारी कृपा उसपर प्रकट होनेके लिये विधान बन जाता है, परंतु वह कृपा जबतक प्रकट नहीं होती, तबतक इधर-उधर भटकना जारी रहता है। यदि किसी प्रकार सच्चे हृदयसे अत्यन्त कातर प्रार्थना भगवान् या किसी सच्चे संतके प्रति हो जाय तो उसी क्षण इस बातपर उसे विश्वास हो जाता है और उसकी सारी अशान्ति मिट जाती है, परंतु यह प्रार्थना होती नहीं। हो तो, देखियेगा—सचमुच भगवान् इतने करुणामय हैं, उनका हृदय इतनी जल्दी पिघल जाता है कि जगत्‌में उसकी तुलना ही असम्भव है। जो चाहियेगा, जैसे चाहियेगा वही उसी प्रकार वे कर सकते हैं। यह नियम केवल लौकिक बातोंमें ही नहीं, परमार्थमें भी यही नियम है। मान लें कि आप प्रार्थना करें कि 'हे भगवन्! मुझे धन दो, मान दो।' इस प्रार्थनाको वे जैसे जल्दी-से-जल्दी सुन सकते हैं; पूरी कर सकते हैं, वैसे ही उतनी ही जल्दीसे 'हे भगवन्! मेरा आपमें दृढ़ विश्वास हो जाय, आपमें मेरा प्रेम हो जाय' इस प्रार्थनाको भी सुन सकते हैं, पूरी कर सकते हैं। पर धनके माँगनेके समय तो आपका हृदय ठीक-ठीक उस धनको भीतरी हृदयसे माँगता है, और विश्वास, प्रेम माँगते समय ऊपरी मनसे नित्य-नियम पूरा करता है। पूजापर बैठकर यह भी एक नियम है—कर लेते हैं; पर सचमुच वह व्याकुलता नहीं होती।.....के लड़केकी बीमारीको लेकर जैसी व्याकुलता थी, क्या उन लोगोंमें कोई भी उतना ही व्याकुल होकर यह चाहते हैं कि 'हमारा मन भगवान्‌में लगे, भगवान्‌पर हमारा विश्वास हो।' विश्वासकी अपेक्षा भी हृदयकी व्याकुलताकी अधिक आवश्यकता है; क्योंकि व्याकुलता विश्वास करा

देगी। अब उस लड़केकी बीमारीमें जो आदमी जो उपाय बतलाता था, वही वे करते थे। विचार भी नहीं रहा था कि 'यह ठीक कहता है या झूठ। ऐसा इसीलिये था कि व्याकुलता थी।' उसी प्रकार जिस दिन आप सच्चे मनसे चाहने लगेंगे, व्याकुल हो जायँगे कि हमारी साधनाकी ऐसी स्थिति एक घंटा ही रहकर क्यों छूट जाती है, क्यों नहीं निरन्तर बनी रहती है, उसी दिन, उसी क्षण भगवान् सुन लेंगे। अभी आपको यह सहन हो रहा है कि स्मरण छूट गया तो क्या हुआ। दिनभर मौजसे रहे, भोजन किया साँझको यहाँ आ गये, बातें कर रहे हैं। पर जब व्याकुलता होगी तब पागलकी-सी अवस्था होकर स्मरणकी स्थिति छूटते ही उसी क्षण, वहींपर लाज-शरम छोड़कर आप रोने लगियेगा और जबतक वह पुनः स्थिति नहीं हो जायगी, तबतक आपका रोना बंद नहीं होगा।

जो हो, ऐसी सच्ची व्याकुलताका उपाय यही है जो आप कर रहे हैं। निरन्तर अपनी जानमें यही चेष्टा रखें कि नाम-लीला-गुण-रूप सुनें, पढ़ें, कहें, स्मरण रखें। करते-करते जैसे-जैसे अन्तःकरण पवित्र होगा, वैसे-वैसे, व्याकुलता उत्पन्न होनेकी, सच्ची लालसा उत्पन्न होनेकी भूमि तैयार होती जायगी। जिस दिन पूर्ण-रूपसे वह भूमि तैयार हो गयी कि कोई सच्चा संत या स्वयं भगवान् उसमें प्रेमका बीज बो देंगे। फिर वह उगेगा, बढ़ेगा, फूलेगा, फलेगा और निरन्तर फूलता-फलता ही रहेगा, उसका कभी फूलना-फलना बंद नहीं होगा।

२८—इस कलममें भगवान् हैं और जहाँ भगवान् हैं, वहीं आजतक जितनी लीला हुई है, हो रही है, होगी, सब-की-सब मौजूद है। आप जिस लीलाको देखना चाहें, जिस रूपको देखना चाहें, उसी रूपमें, उस लीलाके साथ इसी कलमसे भगवान् प्रकट हो सकते हैं।

यह बात नहीं है कि भगवान्‌के यहाँ भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्य-काल हो। वहाँ तो सब वर्तमानकाल ही है। अर्थात् जैसे पाँच हजार वर्ष पहले वृन्दावनमें लीला हुई थी तो इसका यह मतलब नहीं कि वह लीला तो भूतकालकी है। इसका अर्थ यह है कि आजसे पाँच हजार वर्ष पहले वृन्दावनकी लीलावाला फिल्म लोगोंके सामने आया था। वह फिल्म तो आज भी ज्यों-का-त्यों है, केवल छिप गया है। सिनेमा देखते हैं, वह आरम्भसे लेकर अन्ततकका खेल सजाया हुआ होता है। उसी प्रकार भगवान्‌के विराट् दिव्य शरीरमें अनादिकालसे लेकर अनन्तकालतक होनेवाली सभी लीलाएँ सजायी हुई हैं। जो जैसा अधिकारी होता है, उसके सामने उसके अधिकारभरकी लीला आती है, फिर रील घूम जाता है। अर्जुनने चाहा विश्वरूप देखना, उसके सामने उसके अधिकारभरका आया।

२९—चाह सच्ची होनी चाहिये। फिर तो पहले-से-पहले भगवान् मामूली-से-मामूली बात भी करके रख देते हैं। मनमें विचार तो पीछे आयेगा, पर भगवान् जानते हैं कि यह उस दिन उस समय यह चीज चाहेगा तथा पहलेसे ही उसकी पूरी व्यवस्था करके रख देते हैं। एक मामूली-सी बात बतला रहा हूँ—मैं××था, दिनमें किसी कारणसे भोजन कम किया था, इसीलिये जोरसे भूख लग रही थी। मनमें बार-बार भूखका खयाल आता था। मनमें आया कहींसे कोई वृन्दावनका प्रसाद लाकर देता तो थोड़ा खा लेता—तीव्र इच्छा थी। वहाँसे सत्संगमें आया। आते ही एक आदमीने वृन्दावनका प्रसाद देना आरम्भ किया। मैं तो चकित रह गया! क्योंकि मेरे पेटकी बात किसीको मालूम थी ही नहीं। सुना कि × × × × आये हैं और प्रसाद ले आये हैं।

३०—व्रजके मधुर भावके वास्तविक अधिकारी बहुत कम ही होते हैं। जिसके लिये गीता कही गयी, जिस गीताके जोड़का ग्रन्थ मिलना कठिन है, उसी अर्जुनने एक बार भगवान् श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—'प्रभो ! आप गोपसुन्दरियोंके साथ होनेवाली अपनी लीलाकी बात हमें बतायें।' भगवान् नट गये और बोले—'उसे सुनकर तुम्हें देखनेकी इच्छा हो जायगी, इसीलिये इस बातको जाने दो।' अर्जुन व्याकुल होकर चरणोंमें गिर पड़े। इसपर श्रीकृष्णने कहा—'उसके लिये तो साधना करनी पड़ेगी, तुम्हें त्रिपुरसुन्दरीकी उपासना करनी पड़ेगी। वे यदि प्रसन्न होकर तुम्हें दिखाना चाहेंगी, तभी देख सकते हो। दूसरा उपाय नहीं।' कथा पद्मपुराणमें विस्तारसे है—अर्जुन गये हैं वहाँ देवीने स्पष्ट कहा है कि 'अर्जुन ! जो भक्त श्रीकृष्णको प्राणके समान प्यारे हैं, उनमें भी सबको इस लीलाके दर्शन नहीं होते। कोई-कोई विरले ऐसे भक्त होते हैं, जिनपर श्रीकृष्ण यह कृपा कर देते हैं। तुम धन्य हो, जो तुमपर उन्होंने कृपा की है और उस लीलाके दर्शनके लिये तुम्हें मेरे पास भेजा है।' इसके बाद अर्जुनने बड़ी-बड़ी साधना, जैसे देवीने बतायी, की है और फिर जब वे गोपी बन गये हैं, तब श्रीराधाजी आकर उन्हें श्रीकृष्णके उस परम दिव्य धाममें जिससे परे और कुछ भी नहीं है, ले गयी हैं और वहाँका आनन्द पाकर अर्जुन कृतार्थ हुए हैं। जो अर्जुन दिन-रात भगवान्‌के साथ खाते-पीते, बैठते थे, जिन्हें गीताका ज्ञान हो गया था, उनकी यह हालत है। हमारे-जैसे तुच्छ पामर प्राणी तो इस लीलाके कहनेके भी अधिकारी नहीं हैं।

३१—एक रत्नावती देवी थी। वह आम्बेर (जयपुर) की रानी थी, उसको मारनेके लिये सिंह छोड़ा गया। सिंह महलमें गया, वह ध्यानस्थ बैठी थी। सिंह पहुँचा। वह बोली—'आइये, प्रह्लादके

भगवान्! बड़ी कृपा की।' थाल लिया, प्रसाद सजाया, आरती सजायी। सिंह चुपचाप पूजा ग्रहण करता रहा। धूप, दीप, नैवेद्यसे पूजा करके एवं विधिपूर्वक आरती उतारकर रत्नावतीने प्रणाम किया। फिर सिंह वहाँसे उछला तथा पिंजरेमें घुसनेसे पहले दो-तीन पहरेदारोंको खा गया। सिंह तो एक ही था, पर उसने रत्नावतीकी पूजा स्वीकार की और पहरेदारोंको मार डाला। ऐसा क्यों? ऐसा इसलिये कि रत्नावतीका तो सच्चा भगवद्भाव था और पहरेदार सिंहको सिंह मान रहे थे। ऐसे ही प्रत्येक चोर, बदमाश, डाकू भी भगवान् बन सकता है। लाला बलदेवसिंह नामके एक सज्जन देहरादूनमें थे, उनको मरे कई वर्ष हो गये। भगवान्‌के बड़े भक्त थे, असली भक्त थे। बहुत रुपयेवाले थे। एक दिन डाकुओंने नोटिस दी कि 'आज रात्रिको हमलोग लूटने आयेंगे। आप तैयार हो जाइये।' यही नोटिस उनके भतीजेको भी मिली। भतीजे तो पुलिस सुपरिंटेंडेंटके पास गये तथा बलदेवसिंहने रसोइयोंको कहा कि 'खूब बढ़िया-बढ़िया माल बनाओ। आज भगवान्‌के पधारनेकी बात है।' भतीजेसाहब आये। बोले—चाचाजी! क्या इन्तजाम किया? बलदेवसिंहजीने कहा—'खूब बढ़िया-बढ़िया रसोई बनवा रहे हैं उनके स्वागतके लिये।' भतीजेसाहब तो पागल समझकर चले गये। उनके घरपर पुलिसका पहरा बैठा और बलदेवसिंह सचमुच बहुत बढ़िया-बढ़िया बहुत-से आदमियोंको खानेभरकी बहुत-सी रसोई बनवाकर रातभर प्रतीक्षा करते रहे कि अब आये, तब आये। स्वयं भी नहीं खाया। आखिर कुछ हुआ नहीं, पर यदि होता भी तो उनके घर तो डाकू नहीं आते, भगवान् ही आते।

३२—भगवत्प्राप्ति बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है। बाघ, सिंह, हिरन, बकरीको साथ बैठा देनेसे यह नहीं माना जा सकता कि ऐसा

कर देनेवाले भगवान्‌को प्राप्त हुए पुरुष हैं, क्योंकि ये बातें तो बहुत ही तुच्छ एवं नीचे दर्जेकी ही हैं। सर्कसवाले भी पशुओंको शिक्षण देकर वशमें कर लेते हैं। भगवत्प्राप्ति असलमें क्या चीज है, इसे भगवत्प्राप्त पुरुष ही जानते हैं। साधारण संसारी मनुष्य तो देखता है कि किसमें क्या चमत्कार है, पर चमत्कार होना भगवत्प्राप्तिका लक्षण नहीं है। दक्षिणमें एक संत हुए थे ज्ञानदेवजी। उन्हींके समय एक योगी थे चाँगदेव। वे सिंहपर सवारी करते थे। १४०० वर्षकी उनकी आयु थी। प्रत्येक १०० वर्षपर जब मृत्युका समय आता, तब योगबलसे समाधिमें बैठ जाते और फिर १०० वर्षके लिये नया जीवन बना लेते। इतनी शक्ति थी! ज्ञानदेवजी दो भाई थे तथा एक उनके बहन थी, सभी भगवत्प्राप्त पुरुष थे। चाँगदेवके पास उनकी खबर पहुँची, बहुत लोग उनकी प्रशंसा करते। चाँगदेवजीको अभिमान था। सिंहपर चढ़कर मिलने चले। लोग तो बाहरको देखते हैं। बाप रे! कितना बड़ा महात्मा है कि सिंहपर सवारी करता है। लोगोंने कहा—'ज्ञानदेवजी महाराज! एक बहुत बड़े महात्मा आपसे मिलने आ रहे हैं, आप चलिये।' ज्ञानदेवजीके मनमें आया कि 'अच्छा, देखो।' उस समय तीनों भाई-बहन एक टूटी हुई दीवालपर बैठे थे, भगवत्-चर्चा हो रही थी। जब लोगोंने बहुत कहा—'महाराज! बहुत भारी महात्मा आ रहे हैं, अगवानीके लिये चले चलिये।' तब ज्ञानदेवजीने कहा—'ठीक है।' फिर दीवालसे बोले—'री दीवाल! तू चल।' कहनेकी देर थी कि वह दीवाल जमीनसे उखड़कर चल पड़ी। चाँगदेवने देखा—'बाप रे! आजतक योगके द्वारा मैं चेतन प्राणीको ही वशमें करके इच्छानुसार नचा सकता था, पर यह तो जड़पर शासन करता है।' उसी क्षण अभिमान टूट गया और चरणोंमें जा गिरे।

उसी समय ६४ (अभंग) छन्दोंमें उन्हें ज्ञानदेवजीने उपदेश दिया तथा रामनामकी महिमा बतायी कि भगवान्‌के नामके सामने ये सभी बातें तुच्छ हैं। फिर उनकी छोटी बहिनने उन्हें दीक्षा दी, तब उन्हें भगवान्‌की प्राप्ति हुई।

असली संतोंकी पहचान किसी बाहरी चेष्टासे नहीं हो सकती। एक साँईबाबा थे (उनको लोग रजाई ओढ़ा देते। साथमें कुत्ता आता, वे रजाईसे खिसकते-खिसकते बाहर हो जाते। अब इस चेष्टासे ही किसीको भगवत्प्राप्त मान लेना नहीं बनता। साँईबाबाकी बात नहीं है। उनके विषयमें तो एक विश्वस्त सूत्रसे मैंने सुना है कि वे भगवत्प्राप्त पुरुष थे। यद्यपि मैं निश्चयपूर्वक कुछ नहीं जानता। पर ऐसी चेष्टा देखकर किसीको भगवत्प्राप्त मान लेना भूल है।) संतका असली स्वरूप इससे अत्यन्त विलक्षण है। वृन्दावनमें ग्वारियाबाबा थे, कुछ ही वर्ष पहले शरीर छूटा है, उनका विचित्र ढंग था। वे अपनेको श्यामसुन्दरका सखा मानते थे और सचमुच थे भी। उनकी विचित्र-विचित्र बातें आती हैं। दिनभर, पता नहीं, कहाँ-कहाँ घूमते रहते थे। एक दिन रास्तेमें पड़े थे। रात्रिका समय था। कई चोर उस रास्तेमें जा रहे थे। चोरोंने पूछा—'कौन हो?' वे बोले—'तुम कौन हो?' उन सबने कहा—'हम तो चोर हैं।' इन्होंने कहा—'हम भी चोर हैं।' उन्होंने कहा—'चलो, तब चोरी करें।' इन्होंने कहा—'चलो।' सब एक व्रजवासीके घरमें चोरी करने घुसे। वे सब तो चोर थे ही, उन सबने सामान बाँधना आरम्भ किया। ये कुछ देर तो खड़े रहे। फिर वहीं एक ढोलक पड़ी थी। उसे लगे जोरसे ढम-ढमा-ढम बजाने। घरके आदमी जाग गये। वे सब तो भागे, पर ये ढोलक बजाते रहे। घरवालोंने आकर चार-पाँच डंडे बाबाको लगाये।

अन्धकार था। रोशनी जलायी तो देखा कि ग्वारियाबाबा हैं। उन सबको बड़ा दुःख हुआ कि महात्माको डंडे मार दिये। पूछा—'बाबा! तुम कैसे आये?' बोले—'चोरी करबे ताँई आये।' उन सबने पूछा—'और कौन-कौन हते?' बोले—'श्यामसुन्दरके सखा सब हते।' अब देखिये, इन लोगोंकी कैसी चेष्टाएँ होती हैं।

ग्वारियाबाबा मरनेके कुछ दिन पहले बोले—'अब नोटिस आय गयी है, अब नहीं रहूँगो।' मरनेके दो दिन बाद वहाँसे कुछ दूर एक भक्त था, उसके यहाँ गये और दूध पीया। बाबाका एक भक्त था, बड़ा बीमार था। रोने लगा कि 'बाबा, या तो अच्छा कर दो या अब पासमें बुला लो। स्वप्नमें आये। मरनेके दूसरे दिनकी यह बात है। उससे कहा—'रोते क्यों हो? चल, हमारा उत्सव मनाया जा रहा है; देख।' फिर स्वप्नमें ही उसे ले गये। जो-जो था, दिखलाया। फिर कहा—'अमुक दिन तुम्हें ले जायँगे।' नींद खुलनेपर उसने जाँच की। ठीक-ठीक जैसे उत्सव हुआ था, वैसे ही उसने स्वप्नमें देखा था और फिर उसी बतायी हुई तिथिको मर गया।

उनकी ऐसी-ऐसी विलक्षण बातें हैं कि सबका समझना कठिन हो जाता है। पर वे थे सचमुच श्यामसुन्दरके सखा। सच्चे महात्मा थे। उनकी कई चेष्टाओंका कुछ भी अर्थ नहीं लगता था। दो महीने मरनेके पहले हाथोंमें हथकड़ी डालकर घूमते रहते थे कि श्यामसुन्दरने कैद कर दिया है। बड़े भारी संगीतज्ञ थे। कहनेका सारांश यह है कि बाहरी चेष्टा भगवत्प्राप्तिका प्रमाण नहीं बन सकती। बहुत ऊँची चेष्टा करनेवालेमें भी त्रुटि रह सकती है तथा कोई बावला-सा नगण्य व्यक्ति भी बहुत बड़ा महात्मा हो सकता है।

व्रजके प्रेमी संतोंका जीवन सुननेपर तो ऐसा मालूम होगा कि कोई

रोते हैं, कोई हँसते हैं, कोई पागल हैं। कितनोंमें बाहरसे कुछ भी प्रेमके लक्षण नहीं दीखते, पर उनके भीतर श्रीकृष्ण-प्रेमका अनन्त सागर लहराता रहता है। इन प्रेमी संतोंकी पहचान बाहरसे हो ही नहीं सकती।

३३—व्रजजीवन कुछ इतना पवित्रतम जीवन है कि उसका कण ही यदि किसीको कल्पनामें आ जाय तो फिर सांसारिक भोगोंकी तो बात ही क्या, ऊँची-से-ऊँची मर्यादाकी पारमार्थिक स्थितियोंसे भी वह सर्वथा उपरत हो जाता है। परंतु यह करनेसे नहीं होता, यह तो भजनके फलस्वरूप—भगवत्कृपाके प्रभावसे किसी भाग्यवान् साधकमें प्रकट होता है। निरन्तर गुण-लीलाका श्रवण करते-करते, नाम लेते-लेते उस कृपाका प्रकाश होकर किसी-किसी भाग्यवान्‌के अनर्थकी जब पूर्णतया निवृत्ति हो जाती है, तब व्रजप्रेमकी साधना वस्तुतः आरम्भ होती है। उसके पहलेकी साधना तो जबरदस्ती होती है, रुचिपूर्वक नहीं; पर जबर्दस्ती करना भी बड़ा उत्तम है। किसी तरह भी चलनेवालेका रास्ता तो कटता ही है।

३४—श्रीकृष्ण इतने सुन्दर हैं कि कहीं एक बार वे कृपा करके स्वप्नमें भी किसीको एक अपनी हलकी-सी झाँकी दिखा दें तो अनन्त जन्मोंकी आसक्ति उसी क्षण मिटकर वह उस रूपके पीछे पागल हो जाय; पर वे किसीके वशमें तो हैं नहीं ? शास्त्रमें एक श्लोक है, जिसमें यह कहा गया है कि श्रीकृष्ण कितने स्वतन्त्र हैं। कालियनागके फणपर तो नाचते हैं और उनके चरणोंके दर्शनके लिये बड़े-बड़े योगी बेचारे अनन्त जन्मोंसे बाट देखते हैं, पर वे सामने नहीं आते। वे श्रीकृष्ण बड़े ही मौजी हैं। एक अनुभवी भक्त कहते हैं—

गोपालाङ्गणकर्दमेषु विहरन् विप्राध्वरे लज्जसे
ब्रूषे गोकुलहुंकृतैः स्तुतिशतैर्मौनं विधत्से सताम्।

दास्यं गोकुलपुंश्चलीषु कुरुषे स्वाम्यं न दान्तात्मसु
ज्ञातं कृष्ण तवाङ्घ्रिपङ्कजयुगं प्रेमैकलभ्यं मुहुः ॥

'श्रीकृष्ण ! तुम ग्वालोंके आँगनकी कीचड़में लोटते हो, पर विप्रवरोंके यज्ञोंमें जाते हुए लजाते हो; गौ-बछड़ोंके हुंकारका उत्तर देते हो, पर सत्पुरुषोंकी सैकड़ों स्तुतियाँ सुनकर भी मौन धारण किये रहते हो, गोकुलकी पुंश्चलियोंकी दासता करते हो, पर जितेन्द्रिय पुरुषोंके चाहनेपर भी उनके स्वामी नहीं बनते। इससे यह पता लग गया कि तुम्हारे चरण-पङ्कज-युगल केवल प्रेमसे ही प्राप्त हो सकते हैं।' तात्पर्य यह है कि परम—असीम सुन्दर होकर भी वे परम स्वतन्त्र हैं। उनकी हलकी-सी झाँकी भी स्वप्नमें वही कर सकता है, जिसे वे कराना चाहें। खेलना उनका स्वभाव है। उनका खेल भी विचित्र है। राजाको रङ्क, रङ्कको राजा; पापीको संत, संतको पापी; श्मशानको महल, महलको श्मशान—ऐसी ही विचित्र लीला वे करते हैं। किस क्षण, किसके जीवनमें क्या होगा, यह किसको पता ? पर भक्तको डरनेकी आवश्यकता नहीं है। उसे तो उनकी ओर आशा लगाकर भजन करते रहना चाहिये। एक श्लोक है—

प्रतिज्ञा तव गोविन्द न मे भक्तः प्रणश्यति।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य प्राणान् संधारयाम्यहम् ॥

'गोविन्द ! आपकी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तका पतन नहीं होता। मैं इसी बातको याद कर-करके प्राणोंको धारण कर रहा हूँ।'

३५—यही श्रीकृष्ण हैं। अणु-अणुमें श्रीकृष्ण हैं और जहाँ हैं, अपनी सम्पूर्ण शक्ति, समग्र ऐश्वर्यको लेकर ही वर्तमान हैं। अब यदि हमारा इस बातपर विश्वास हो जाय तो हम दूसरेका मुँह फिर क्यों ताकें। किसीकी भी सहायताकी आवश्यकता नहीं। आजतक जितने

भी संत हुए हैं, हैं और होंगे—सब उनके अंदर हैं, सब उन श्रीकृष्णके अंदर ही हैं जो अणु-अणुमें स्थित हैं। यहाँतक कि हम जिस मनसे सोचते हैं, उस हमारे मनमें ही वे स्थित हैं। पर हमारा विश्वास नहीं, तब क्या हो ? यह घड़ी है, इसी घड़ीके अणु-अणुमें श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण ही घड़ी बने हुए हैं। यदि विश्वास हो, ठीक-ठीक संशयहीन विश्वास हो तो यहीं इस घड़ीमें ही वे प्रकट हो जायँ और आपसे बातें करने लग जायँ। समस्त वृन्दावनकी लीला आप यहीं इस घड़ीके स्थानपर ही देख सकते हैं। प्रह्लादका निश्चय था—खंभेमें भगवान् हैं, खंभा-जैसे जड पदार्थमें भी वह ठीक-ठीक भगवान्‌को देखता था। इसलिये भगवान् वहीं प्रकट हो गये नृसिंहरूपमें, इसलिये कि उन्हें हिरण्यकशिपुको मारना था। पर कोई चाहे कि श्रीकृष्णरूपमें ही प्रकट हों तो श्रीकृष्णरूपसे खंभेमें प्रकट होंगे और पूछेंगे—'प्यारे ! बोलो क्या चाहते हो ?' आप खूब मजेमें कह सकते हैं—'हमें व्रजकी लीलाके दर्शन कराइये।' और उसी क्षण ये चाहें तो दिखा सकते हैं। अर्जुनने प्रार्थना की—'नाथ ! मैं आपका विश्वरूप देखना चाहता हूँ, तो ठीक है, देखो।' वहीं रथपर सारथिके रूपमें जो श्रीकृष्ण थे, उन्हींके शरीरमें विश्वरूप दीखने लग गया, सारथि ही बदल गया। यदि अर्जुनके मनमें प्रेममयी लीला देखनेकी इच्छा होती तो भगवान् उन्हें वहीं उसी क्षण प्रेममयी लीला भी दिखा सकते थे। यह ठीक है कि बहुत भारी कड़ी साधनासे प्रेममयी लीलाके दर्शन होते हैं, पर साधनाका बन्धन साधकके लिये है, न कि श्रीकृष्णके लिये। वे चाहें तो बिना किसी भी साधनाके उसी क्षण लीला दिखा दें। साधना श्रीकृष्ण ही करवाते हैं; पर यह बन्धन नहीं कि साधना होगी, तभी दर्शन होगा ? वे जो चाहें, वही नियम बन सकता है।

बस, विश्वास होना चाहिये—यहाँ श्रीकृष्ण हैं। बस, इतना ही। फिर हाथ जोड़कर कभी बात करें, कभी प्रार्थना करें, कभी रोयें, कभी खीझें। उनसे कहें—क्यों प्रभो! केवल गीतामें कहते ही हो कि वैसी बात भी है? तुमने ही तो कहा है कि मेरे लिये सब समान हैं, तो मैं भी तुम्हारे लिये सबके समान ही हूँ; फिर मुझे क्यों नहीं स्वीकार करते? यदि कहो कि तुम चाहते नहीं तो तुम्हीं बताओ मैं क्यों नहीं चाहता? मेरे अंदर चाह उत्पन्न करो। नाथ! यह तो जानते ही हो, तुमसे छिपा नहीं है कि मैं सुख चाहता हूँ, दुःख कदापि नहीं चाहता, भीतरी मनसे सुख चाहता हूँ। यदि तुम कहो कि फिर मुझे भजो, मुझमें ही सुख है और कहीं भी सुख नहीं है तो बताओ, मेरे मनमें तुम्हारी इस बातपर विश्वास क्यों नहीं होता? क्यों मैं विषयोंका भजन करता हूँ? तुम्हीं आकर एक बार बता जाओ—बस, एक बार ही सामने आकर बता जाओ, फिर चले जाना। तुम कहोगे कि मैं तो उसके सामने आता हूँ जो मेरे लिये अत्यन्त व्याकुल होता है तो फिर मेरे अंदर वही व्याकुलता उत्पन्न कर दो। यदि कहो कि तुम यह भी नहीं चाहते कि मेरे अंदर व्याकुलता उत्पन्न हो तो तुम्हीं बताओ, मैं ऐसा क्यों नहीं चाहता? इस प्रकार बातें कीजिये। पर यह तभी होगा जब आपका यह विश्वास हो कि श्रीकृष्ण यहाँ हैं, अवश्य हैं। विश्वासके लिये भी उपाय है—बार-बार कहें कि 'मेरे नाथ! मुझे क्यों विश्वास नहीं होता कि तुम यहाँ हो, तुम्हीं बताओ। मैं कहाँसे विश्वास लाऊँ? मैं दुःख चाहता नहीं; सुख चाहता हूँ—इसमें तनिक भी झूठ नहीं। तुम भी कहते हो—सुख मिलेगा मुझपर विश्वास करनेसे; तो फिर तुमपर मेरा विश्वास क्यों नहीं होता? क्या मैं तुम्हारे लिये दूसरा हूँ?'

३६—ऊँचे प्रेमका एक उदाहरण है—पतिव्रता स्त्री। पति

परदेशमें है। अब मन नहीं लगता, तो वह मन नहीं लगनेपर एकान्तमें बैठकर रोने लग जायगी; पर उसके मनमें यह नहीं आ सकता कि 'चलें, बाहर घूम-फिरकर मन लगायें।' इसी प्रकार भक्तका मन न लगनेपर वह एकान्तमें बैठकर भगवान्‌को याद करके रोने लगता है, रोकर ही मन शान्त करता है; उसके मनमें यह नहीं आता कि चलो चार दोस्तोंमें बैठकर जगत्‌की—विषयोंकी चर्चा करके मन बहला लें। यहाँका पति अल्पज्ञ है, पर श्रीकृष्ण सर्वज्ञ हैं और जहाँ भक्त रो रहा है, वहीं वे अणु-अणुमें छिपे हुए हैं। उसका रोना उनमें करुणाका संचार कर देता है और उनको यह व्यवस्था करनी पड़ती है कि जबतक मैं नहीं मिलता, तबतक इसका मन थोड़ा-बहुत लगा रहे। जैसे स्त्रीको पतिका संदेश सुननेपर बड़ी शान्ति मिलती है, वैसे ही भक्तको भगवद्गुणानुवाद तथा आश्वासनकी बातें अर्थात् 'वे मिलेंगे, निश्चय मिलेंगे' सुनकर शान्ति मिलती है। इसीलिये ऐसे भक्तके लिये भगवान् संतपुरुषोंको सङ्ग देते हैं। संत दूत हैं, वहाँ उनसे मिलकर सारी बातें लाते हैं और भक्तको संतोष कराते हैं।

३७— × × × ने उस दिन बहुत ही मर्मकी बात कही थी—एक विषयोंके लिये रोता है और एक भगवान्‌के लिये रोता है। जो विषयोंके लिये रोता है, उसके तो आदि-मध्य-अन्तमें दुःख-ही-दुःख हैं; क्योंकि विषयोंमें दुःख-ही-दुःख है। और जो भगवान्‌के लिये रोता है, उसके आदि-मध्य-अन्तमें सुख-ही-सुख है; क्योंकि भगवान्‌में सुख-ही-सुख है। विषयीका मन रोते समय विषयमें तदाकार होता है। इसका अर्थ है कि उसका मन दुःखमें तदाकार होता है और भगवान्‌के लिये विरहमें रोनेवालेका मन भगवान्‌में तदाकार होता है। इसका अर्थ यह है कि उसका मन आत्यन्तिक सुखसे तदाकार हो रहा है।

३८—एक बात विचारिये। भोले-भाले बच्चे एवं सुन्दरी स्त्री और आँखें जाती हैं। पर विचारकर देखिये—इनके शरीरके भीतर क्या है ? हाड़, मांस, मल, मूत्र—गंदी-से-गंदी चीजें भरी हैं। फिर भी भ्रम हो जाता है और आँखें बरबस चली जाती हैं तथा मन भी यह कहता है कि देखो कैसे सुन्दर हैं।' अब सोचिये कि यह भ्रम क्यों होता है ? इनमें आंशिक रूपसे श्रीकृष्ण मौजूद हैं और वे हैं, इसलिये यह भ्रम हो जाता है कि यह सुन्दर है फिर भला, स्वयं श्रीकृष्ण जिस समय नटवरनागर मुरलीधरके रूपमें किसीके सामने आ जाते होंगे, उसकी क्या दशा होती होगी। जिनकी एक चमकमात्रसे ऐसा भ्रम हो जाता है कि हाड़, मांस, मल, मूत्रका थैला इतना सुन्दर प्रतीत होने लगता है, फिर जब वे ही स्वयं निजरूपसे जिस समय दर्शन देते होंगे, उस समयकी दशा कितनी विचित्र होती होगी।

३९—सचमुच ही यह जो कुछ है—सभी श्रीकृष्ण हैं। एक श्लोक भगवान्‌ने भागवतमें कहा है—इतना साफ कि क्या बताऊँ। पर हमारा विश्वास नहीं है, इसीलिये हम दुःखी हैं। कहते हैं—'मनसे, वचनसे, दृष्टिसे तथा और सभी इन्द्रियोंसे जो ग्रहण होता है; वह मैं हूँ—इस बातको जान लो।' अब विश्वास हो तो अपने पुत्र या स्त्रीको तो आँखसे आप देखते ही हैं और आँखसे देखी हुई चीज श्रीकृष्ण कहते हैं 'मैं हूँ।' फिर उनके व्यवहारसे दुःख क्यों होगा ?

४०—श्रीकृष्णका स्पष्ट ध्यान नहीं होता तो श्रीकृष्णकी सेवाके उपकरणोंका ही ध्यान कीजिये। भावना कीजिये—भगवान्‌को धूप दे रहे हैं; धूपकी कटोरीका ध्यान करते अथवा धूपके धूएँका ध्यान करते हुए ही मर गये तो आपको निश्चय-निश्चय भगवत्प्राप्ति हो जायगी। व्रजके पेड़का ध्यान करते हुए ही मरे, पर आपको प्राप्ति होगी

श्रीकृष्णकी ही; क्योंकि वहाँका पेड़ श्रीकृष्ण ही है। वह पेड़ यहाँकी तरह जड नहीं। मान लें, कोई ध्यान करता है—वनसे श्रीकृष्ण लौट रहे हैं, संगमरमरकी सड़क है, आगे-पीछे गाय हैं। सड़कके दोनों किनारे बड़े-बड़े आलीशान महल हैं, महलके नीचे फुटपाथ है, उसपर हरे-हरे वृक्ष लगे हैं। अब यदि श्रीकृष्णके रूपका ध्यान न होकर फुटपाथ, सड़क, वृक्ष आदि—इनमेंसे किसी भी वस्तुका ही ध्यान क्यों न हो, पर मन फँस गया तो यहीं जीवित अवस्थामें ही उसे श्रीकृष्णके दर्शन हो जायँगे। साधना पूरी होनेके पहले ही मरना पड़े तो मरते समय चाहे किसी भी वस्तुका ध्यान क्यों न हो, यदि वह श्रीकृष्णके वृन्दावन-भावसे भावित वस्तु है, चाहे पेड़-पौधा ही क्यों न हो, तो उसे निश्चय ही श्रीकृष्णकी प्राप्ति ही होगी। इसका कारण यह कि वृन्दावनमें पेड़, सड़क, डंडा, पत्ता, मकान, खंभा—जो कुछ भी है, वह सर्वथा सच्चिदानन्दमय श्रीकृष्णरूप ही है। इसलिये लीलाके ध्यानमें बहुत आसानी है।

४१—चाहे ध्यान न लगे, पर अपनी जानमें जो कुछ समय निकालकर सच्चे हृदयसे पूरी चेष्टा करता है कि मेरा मन भगवान्‌में लग जाय, उसका ध्यान न होनेपर भी भगवान् उसे अपना भक्त मान लेते हैं। ध्यान न लगे, उतनी देर जीभसे नाम-जप तो हो ही सकता है। चेष्टा हुई या नहीं—इसकी यही पहचान है कि आप जैसे दो घंटे रोज बैठें और उतनी देर यह खयाल रखें कि बस और कुछ भी याद नहीं करना है। अब होगा यह कि आरम्भ करते ही मनमें दूसरी-दूसरी बातें याद आयेंगी। उन्हींके चिन्तनमें मन लग जायगा। पर फिर खयाल आयेगा कि 'अरे, मन-तो भाग गया।' बस, यह खयाल आते ही यदि आपने उतनी बार सचाईके साथ उसे जोड़नेकी चेष्टा की, तब तो

समझना चाहिये कि पूरी चेष्टा हुई। यह न होकर जब ध्यान करने बैठे और दूसरी व्यापार-सम्बन्धी बातोंमें मन भाग गया तथा फिर जब याद आया तो याद आनेपर भी उन्हीं बातोंको सोचने लग गये और यह कहने लगे कि क्या करें, जब ध्यान नहीं होता, तब व्यापारकी ही बात सोच लें—ऐसा करना ही 'पूरी चेष्टा नहीं करना' है। मान लें दो घंटेमें ५०० बार मन भागा, पर ५०० बार ही जब-जब याद आयी, तब-तब पूरी तत्परतासे उसे भगवान्‌में जोड़ देनेकी क्रिया करके यह निश्चय करना कि अब नहीं भागने दूँगा—यही पूरी चेष्टा है।

४२—भागवतमें महापुरुषकी उच्च स्थितिका लक्षण बतलाते हुए यह कहा गया है कि जिसे सचमुच ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है, उसे यह ध्यान भी नहीं रहता कि मेरा शरीर बैठा है कि खा रहा है कि टट्टी-पेशाब कर रहा है। उसे अपने शरीरका बिलकुल ही ज्ञान नहीं रहता। जैसे शराब पीकर मनुष्य पागल हो जाय और फिर उसके ऊपर वस्त्र है या नहीं—इस बातका उसे ज्ञान नहीं होता, वैसे ही ब्रह्मप्राप्त पुरुषको अपने शरीरका ज्ञान नहीं होता कि यह छूट गया है कि है। वह तो सदाके लिये आत्मानन्दमें डूब जाता है। शरीर लोगोंकी दृष्टिमें प्रारब्ध रहनेतक काम करता है, फिर वह भी प्रारब्ध समाप्त होते ही गिर पड़ता है। ये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णके वाक्य हैं। अब आप सोचें—यदि कोई सचमुच ब्रह्मप्राप्त पुरुष आपको मिला है तो उनमें यदि वह सच्चा प्राप्तपुरुष है तो ये लक्षण घटेंगे ही; पर यदि दीखता है कि वह महापुरुष पेशाब करता है, भोजन करता है, सबसे बातचीत करता है, व्यवहारमें सलाह देता है और कहीं भी पागलपन नहीं दीखता तो फिर दोमें एक बात होनी चाहिये—या तो वह प्राप्तपुरुष नहीं है, साधक है, या वह इतने ऊँचे स्तरपर पहुँचा हुआ पुरुष है कि उसके

प्रारब्धको निमित्त बनाकर उसके अन्तःकरणमें स्वयं भगवान् ही उसकी जगह काम करते हुए जगत्‌में अपनी भक्ति, अपने तत्त्वज्ञानका प्रचार कर रहे हैं। इन दो बातोंके अतिरिक्त तीसरी बात मेरी समझमें नहीं आती। या तो उसमें कमी है या वह इतना ऊँचा है कि स्वयं भगवान् उसके शरीररूप खोलीके अन्दरसे काम कर रहे हैं।

देखिये, आपने भगवान्‌को देखा है ? नहीं देखा है। पर फिर उन्हें मानते क्यों हैं ? इसीलिये मानते हैं कि संतोंने उन्हें देखा है और शास्त्र कहते हैं कि 'भगवान् हैं' अतः उसी शास्त्रकी यह बात है कि संत—असली संतका स्वरूप ऐसा होता है। विश्वास होना तो कठिन है; क्योंकि अन्तःकरण सांसारिक वासनाओंसे इतना भरा होता है कि सत्यका प्रकाश उसमें छिपा रहता है। पर सच मानिये—जिस दिन आपका अन्तःकरण तैयार हो जायगा अर्थात् संसारसे बिलकुल उपरत हो जायगा, उस दिन संतमें ही नहीं, आपकी जहाँ दृष्टि जायगी—वहीं एक भगवान्-ही-भगवान् दीखेंगे। पर अभी तो जो आपको दीखता है, उसीको लेकर आपके प्रश्नपर विचार करना है। अस्तु ! आपको जहाँ संत दीखते हैं, केवल वहाँ ही नहीं, जहाँ यह घड़ी दीखती है, वहाँ भी श्रीभगवान् हैं और पूर्णरूपसे हैं। आपमें, मुझमें, इनमें और सब वस्तुओंमें हैं। आपमें, इनमें, हममें प्रकट नहीं हैं—यहाँ छिपे हुए हैं। ये ही भगवान् जहाँ आपको संतका शरीररूप खोली दीखती है—वहाँ प्रकट रहते हैं। अवश्य ही इस बातको समझ लेना थोड़ा कठिन है; क्योंकि वास्तवमें इस बातको बतानेके लिये कोई दृष्टान्त नहीं है। पर ऐसे समझनेकी चेष्टा करें कि जिस दिन श्रद्धा हो जायगी, उस दिन तो यह घड़ी ही भगवान् बन जायगी। दीवाल, खंभे—सब भगवान् बन जायँगे और प्रह्लादकी तरह फिर सबमें भगवान्‌के ही दर्शन होंगे। यह

तो श्रद्धाकी बात है; क्योंकि इन चीजोंमें भगवान् प्रकट नहीं हैं। पर जहाँ प्रकट हैं, वहाँ श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं होती। वहाँ जरूरत होती है केवल देखनेकी, सम्पर्कमें आनेकी। घड़ी देखनेसे अपनेको भगवान्‌की अनुभूति नहीं हो सकती, न घड़ी आपका कल्याण ही कर सकती है। पर संतको देखनेमात्रसे ही, सम्पर्कमें आनेमात्रसे ही आपको भगवान्‌की अनुभूति होनी प्रारम्भ हो जायगी और संतका दर्शन आपका कल्याण कर देगा; क्योंकि वहाँ भगवान् प्रकट हैं।

जैसे आग इस कलममें भी है, इस चौकीमें भी है और हमारे शरीरमें भी है; पर फिर भी संध्या होते ही हमें ठंढ लगेगी ही। पर यहींपर यदि इस कलम, इस चौकीको घिसनेसे आग प्रकट हो जाय तो फिर तो श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं होगी कि हमारी ठंढ दूर हो; इसके पास बैठते ही ठंढ दूर हो जायगी, चाहे आँख मूँदकर ही क्यों न बैठें। एक अंधेको भी बाहरसे लाकर यदि यहाँ बिठा देंगे, जो आग देख नहीं सकता, श्रद्धा भी नहीं कर सकता कि आग ऐसी होती है, पर ठंढ उसकी भी दूर होगी। इसी प्रकार भगवान् जहाँ-जहाँ अप्रकट हैं, वहाँके लोग दुःखसे त्राहि-त्राहि करते हैं; पर वे ही लोग यदि संतके पास जा पहुँचें तो फिर उनको श्रद्धा नहीं करनी पड़ेगी, बिना श्रद्धाके ही, बिलकुल बिना भावके ही उनका दुःख दूर हो जायगा। अब प्रश्न होता है कि कोई कहे कि 'हमें तो सच्चा संत मिल गया और यदि बिना भावके ही कल्याण होता है तो हमारा क्यों नहीं हुआ ? हमारे मनमें अशान्ति क्यों है ? हमें दुःख क्यों है ?' तो इसका उत्तर यह है कि आप सचमुच ही संतके सम्पर्कमें नहीं आये। नहीं तो, कल्याण हो ही जाता। श्रद्धाकी बिलकुल ही आवश्यकता नहीं है, आवश्यकता है केवल सम्पर्कमें आनेकी। आप नहीं आये; इसीलिये आपका दुःख नहीं